जनवरी, 2022

I.S.S.N. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त

संपादक

श्री अविनाश शुक्ला
श्री असलम खान

सहायक संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक

श्री महीपाल सिंह
श्री जसवन्त सिंह

ISSN-2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2022 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जनवरी, 2022 अंक - 1

प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त

संपादक

असलम खान

(2022) 1 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on Website → https://bharatkosh.gov.in/product/product

---

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001.
दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

यदि राज्य द्वारा लोक प्रयोजन हेतु कोई भूमि अधिगृहीत की जाती है जो त्रुटिपूर्ण और नियमों के विरुद्ध है तो क्या ऐसा अधिग्रहण अवैध होगा । इसी प्रकार के मामले पर विचार करते हुए, माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने **उपाध्यक्ष, कानपुर विकास प्राधिकरण** बनाम **गफ्फार और एक अन्य** (2022) 1 सि. नि. प. 1 वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया कि यदि विवादित भूमि का अधिग्रहण त्रुटिपूर्ण और नियमों के विरुद्ध है और वादी उक्त भूमि पर राजस्व अभिलेखों के माध्यम से अपना अधिकार, हक और कब्जा साबित कर देता है तो उक्त भूमि का अधिग्रहण रद्द किए जाने योग्य होगा और वादी का अधिकार, हक और कब्जा मान्य और विधिपूर्ण होगा ।

यदि लोक अदालत मामलों की सुनवाई के दौरान अपने कानूनी दायित्व का निर्वहन नहीं करता है और मनमाने तरीके से निर्णय पारित करता है तो क्या इस प्रकार पारित निर्णय पक्षकारों पर बाध्यकारी होगा । इसी प्रकार के मामले पर विचार करते हुए, माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने **प्रबन्धक, भारतीय जीवन बीमा निगम, बस्ती** बनाम **स्थायी लोक अदालत, बस्ती और अन्य** (2022) 1 सि. नि. प. 31 वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया कि यदि स्वास्थ्य बीमा के अधीन प्रतिकर का दावा करते हुए पक्षकार लोक अदालत के पास जाते हैं तो लोक अदालत का यह कानूनी दायित्व है कि वह पक्षकारों के बीच बीमा प्रतिकर राशि से संबंधित विवाद में, नियमानुसार सौहार्दपूर्ण समझौता कराए, यदि वह अपने इस कानूनी दायित्व का निर्वहन नहीं करते हुए स्वयं कोई निर्णय देता है तो वह निर्णय विधिविरुद्ध और दूषित होगा और ऐसा निर्णय असांविधानिक होने के कारण रद्द किए जाने योग्य होगा ।

यदि वसीयती उत्तराधिकार में प्राप्त संपत्ति को सम्यक् रूप से साबित कर दिया जाता है तो क्या तत्पश्चात् उस संपत्ति का विभाजन किया जा सकता है । इसी प्रकार के प्रश्न पर विचार करते हुए, माननीय

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय ने **शिवनारायण गुप्ता** बनाम **व्यासनारायण गुप्ता और अन्य** (2022) 1 सि. नि. प. 70 वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया कि यदि संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब सम्पत्ति में वसीयत द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त कर लिया जाता है और उसे सम्यक् रूप से साबित कर दिया जाता है तो तत्पश्चात् ऐसी सम्पत्ति के विभाजन की मांग नहीं की जा सकती है और इसके निमित्त वाद खारिज किए जाने योग्य होगा ।

इस अंक में, न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 का हिन्दी पाठ भी प्रकाशित किया जा रहा है जो पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक और अतिमहत्वपूर्ण है जिसका परिशीलन किया जा सकता है । उपर्युक्त निर्णयों के अतिरिक्त अन्य कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर निर्णय प्रकाशित किए जा रहे हैं जो विधि-विद्यार्थियों, अधिवक्ताओं, न्यायाधीशों, विधि-अध्यापकों तथा विधि के ज्ञान में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए अत्यंत लाभकारी साबित होंगे ।

कमला कान्त, परामर्शदाता
प्रभारी – उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जनवरी, 2022

निर्णय सूची

	पृष्ठ संख्या
अत्तर सिंह **बनाम** भारत संघ और अन्य	108
उपाध्यक्ष, कानपुर विकास प्राधिकरण **बनाम** गफ्फार और एक अन्य	1
ज्योति शंकर पांडा **बनाम** ज्योतिर्मयी दास	47
दीपक कुमार **बनाम** हिमाचल प्रदेश कर्मचारी चयन आयोग और एक अन्य	131
प्रबन्धक, भारतीय जीवन बीमा निगम, बस्ती **बनाम** स्थायी लोक अदालत, बस्ती और अन्य	31
महावीर इंटरनेशनल एपेक्स **बनाम** महावीर इंटरनेशनल एसोसिएशन	113
शिवनारायण गुप्ता **बनाम** व्यासनारायण गुप्ता और अन्य	70
शिव प्रसाद वर्मा और अन्य **बनाम** देव नारायण सिंह और अन्य	15
श्रीपाल मेशराम **बनाम** उर्मिला मेशराम	89
हरिकृष्णा इंजीनियरिंग वर्क्स और अन्य **बनाम** सिंडिकेट बैंक और अन्य	57

संसद् के अधिनियम

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 15

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66)

– धारा 19(1) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 18 का नियम 4 और हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13] – क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की ईप्सा करना – विवाह असुधार्य स्तर पर नहीं पहुंचना – विरोधी पक्षकार के आचरण, कृत्य, परिस्थितियों इत्यादि द्वारा क्रूरता साबित नहीं होना – विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने से इनकार करना – यदि विधिक तौर पर विवाहित पति/पत्नी, क्रूरता के आधार पर दूसरे के विरुद्ध विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने की ईप्सा करते हैं तो उन्हें अभिलेख पर यह साबित करना होगा कि दूसरे पक्षकार की क्रूरता के कारण उनके बीच विवाह असुधार्य स्तर पर पहुंच चुका है और क्रूरता को भी स्पष्ट रूप से साबित करना होगा, अन्यथा जीवन के दिन-प्रतिदिन टूट-फूट के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर नहीं की जा सकती है ।

श्रीपाल मेशराम बनाम **उर्मिला मेशराम** 89

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 173 – अपीलार्थी के साथ दुर्घटना कारित होना – बस की टक्कर से चोटें आना – अस्पताल ले जाते हुए मृत्यु होना – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी – मृतक की आश्रित विधवा द्वारा दावा याचिका फाइल किया जाना – बीमा कंपनी द्वारा दावे का विरोध किया जाना – दुर्घटना के समय पंजीकृत यान का बीमा होना – यदि तथ्यों से यह साबित हो जाता है कि दावा याचिका

पृष्ठ संख्या

ठीक प्रकार से फाइल की गई है तो उन तथ्यों के आधार पर क्षतिपूर्ति की राशि का भुगतान करना अनिवार्य है जो मामले की परिस्थितियों और प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य पर विचार करते हुए अवधारित की जाती है ।

शिव प्रसाद वर्मा और अन्य बनाम **देव नारायण सिंह और अन्य** 15

लेटर्स पेटेन्ट अपील के खण्ड 15 के अधीन अपील

– [सपठित प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण तथा वित्तीय संपत्ति और सुरक्षा हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 13(4), 17 (2016 के अधिनियम सं. 44 द्वारा यथासंशोधित)] – अपील – ऋणियों द्वारा कार्यशील पूंजी ऋण स्वीकृति का संवितरण की मांग करना – स्वीकृत ऋण के संवितरण की प्रतिज्ञा के विश्वास पर औद्योगिक इकाई में भौतिक निवेश किया जाना – ऋण के दुरुपयोग और उचित रूप से ऋण खाते के गैर-संचालन के आधार पर आगे ऋण वितरित करने के लिए बैंक का इनकार करना – ऋणी के खाते का गैर-निष्पादन संपत्ति घोषित किया जाना – ऋणी, वसूली प्रक्रिया रोकने के लिए सप्रतिज्ञा विबंधन का अभिवाक् उद्भूत नहीं हो सकता – यदि किसी व्यक्ति (ऋणी सहित) के विरुद्ध एसएआरएफएईएसआई अधिनियम, 2002 की धारा 13 के अधीन कार्यवाहियां की जाती हैं तो वह उक्त अधिनियम की धारा 17 के अधीन उन कार्यवाहियों के विरुद्ध अपील फाइल कर सकता है जिसका निपटारा गुणागुणों के आधार पर किया जा सकता है ।

हरिकृष्णा इंजीनियरिंग वर्क्स और अन्य बनाम **सिंडिकेट बैंक और अन्य** 57

पृष्ठ संख्या

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 226 – रिट याचिका – सरकारी कर्मचारी द्वारा पदच्युति आदेश के विरुद्ध आवेदन फाइल करने में अत्यधिक विलम्ब अर्थात् 2164 दिनों का विलम्ब कारित करना – विलम्ब माफी के लिए कारण देना – समुचित कारण होने के आधार पर आवेदन खारिज होना – यदि किसी मामले में, आवेदन/अपील/रिट आदि फाइल करने में अत्यधिक विलम्ब कारित किया जाता है तो ऐसी दशा में विलम्ब माफी के लिए आवेदन को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता है जब तक कि विलम्ब कारित होने के बारे में समुचित और युक्तियुक्त कारण/कारणों का स्पष्ट तौर पर उल्लिखित नहीं किया जाता है ।

अत्तर सिंह बनाम **भारत संघ और अन्य** 108

– अनुच्छेद 226 – रिट याचिका – अनुसूचित जाति संवर्ग के अभ्यर्थी का सामान्य संवर्ग अभ्यर्थी के रूप में चयन – चुनौती – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि कोई अनुसूचित जाति संवर्ग का अभ्यर्थी सामान्य संवर्ग के अभ्यर्थी के लिए अभिप्रेत पद पर अपनी योग्यता से चयनित हुआ है तो उसे इस आधार पर नियुक्ति देने से इनकार नहीं किया जा सकता है कि वह सामान्य संवर्ग का अभ्यर्थी नहीं है – क्योंकि उसका चयन गुणागुणों पर और उसकी योग्यता के आधार पर हुआ है जो युक्तियुक्त और तर्कसंगत भी है ।

दीपक कुमार बनाम **हिमाचल प्रदेश कर्मचारी चयन आयोग और एक अन्य** 131

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 226 [सपठित विधि सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अध्याय 6क की धारा 22ग और उपधारा (1) से उपधारा (7) तक] – रिट याचिका – याची द्वारा प्रश्नगत बीमा कम्पनी के साथ अपनी पत्नी का स्वास्थ्य बीमा कराना – पत्नी की बीमारी के कारण अपोलो अस्पताल, दिल्ली में भर्ती कराया जाना – पत्नी पर इलाज के दौरान हुए खर्चे का बीमा कम्पनी से दावा करना – बीमा कम्पनी द्वारा याची द्वारा मांग की गई राशि देने से इनकार करना – लोक अदालत में मामला फाइल किया जाना – लोक अदालत द्वारा पक्षकारों के बीच सौहार्दपूर्ण समझौता कराने के बजाय स्वयं निर्णय देना – निर्णय आक्षेपित करना – यदि स्वास्थ्य बीमा के अधीन प्रतिकर का दावा करते हुए पक्षकार लोक अदालत के पास जाते हैं तो लोक अदालत का यह कानूनी दायित्व है कि वह पक्षकारों के बीच बीमा प्रतिकर राशि से संबंधित विवाद में, नियमानुसार सौहार्दपूर्ण समझौता कराए, यदि वह अपने इस कानूनी दायित्व का निर्वहन नहीं करते हुए स्वयं कोई निर्णय देता है तो वह निर्णय विधिविरुद्ध और दूषित होगा और ऐसा निर्णय असांविधानिक होने के कारण रद्द किए जाने योग्य होगा ।

प्रबन्धक, भारतीय जीवन बीमा निगम, बस्ती
बनाम **स्थायी लोक अदालत, बस्ती और अन्य** 31

– अनुच्छेद 226 [सपठित राजस्थान किराया नियंत्रण अधिनियम, 2001 की धारा 9 और 18] – भू-स्वामी द्वारा संपत्ति पट्टे पर दिया जाना – पट्टे की अवधि समाप्त होना – भू-स्वामी द्वारा पट्टाधृत संपत्ति

पृष्ठ संख्या

से किराएदार की बेदखली के लिए किराया अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल किया जाना – अधिकारिता का अभाव – यदि कोई अधिकरण ऐसे मामलों से संबंधित आवेदन ग्रहण कर लेता है जिनके संबंध में उसकी अधिकारिता नहीं है तो उसके द्वारा पारित निर्णय और आदेश कायम रखे जाने योग्य नहीं होगा ।

महावीर इंटरनेशनल एपेक्स बनाम **महावीर इंटरनेशनल एसोसिएशन** 113

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 96 [सपठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 2, 63 और 71] – अपील – संयुक्त कुटुम्ब सम्पत्ति की वसीयत – वसीयत सम्यक् रूप से साबित होना – तत्पश्चात् उक्त सम्पत्ति के विभाजन की मांग करना – यदि संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब सम्पत्ति में वसीयत द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त कर लिया जाता है और उसे सम्यक् रूप से साबित कर दिया जाता है तो तत्पश्चात् ऐसी सम्पत्ति के विभाजन की मांग नहीं की जा सकती है और इसके निमित्त वाद खारिज किए जाने योग्य होगा ।

शिवनारायण गुप्ता बनाम **व्यासनारायण गुप्ता और अन्य** 70

– धारा 100 [सपठित नगर महापालिका अधिनियम, 1959] – भूमि पर कब्जा होना – राजस्व अभिलेखों में विवादित भूमि का नामांतरण दर्ज होना – अधिग्रहण – यदि विवादित भूमि का अधिग्रहण त्रुटिपूर्ण और नियमों के विरुद्ध है और वादी उक्त भूमि पर राजस्व अभिलेखों के माध्यम से अपना अधिकार, हक और

पृष्ठ संख्या

कब्जा साबित कर देता है तो उक्त भूमि का अधिग्रहण रद्द किए जाने योग्य होगा और वादी का अधिकार, हक और कब्जा मान्य और विधिपूर्ण होगा ।

उपाध्यक्ष, कानपुर विकास प्राधिकरण बनाम **गफ्फार और एक अन्य** 1

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 25(2) – अपील – स्थायी निर्वाह-भत्ते की मात्रा का निर्धारण करना – पति का विवाह-विच्छेद के समय पर टी. सी. एस. में कार्यरत होना – पति के वेतन पर्ची के अनुसार, कटौती के बाद 1,60,000/- रुपए मासिक वेतन होना – स्थायी निर्वाह-भत्ते की मात्रा पक्षकारों की हैसियत को विचार में लेते हुए निर्धारित की जानी चाहिए – पत्नी भी प्रतिमास लगभग 15,000/- रुपए कमाती है – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, स्थायी निर्वाह-भत्ता 40,000/- रुपए से बढ़ाकर 48,000/- रुपए निर्धारित किया जाना – विवाह-विच्छेद की दशा में, स्थायी निर्वाह-भत्ता, पक्षकारों की हैसियत को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाना चाहिए, इस मामले में पक्षकारों की हैसियत को देखते हुए स्थायी निर्वाह-भत्ता 48,000/- रुपए निर्धारित करना उचित, समुचित और युक्तियुक्त होगा ।

ज्योति शंकर पांडा बनाम **ज्योतिर्मयी दास** 47

उपाध्यक्ष, कानपुर विकास प्राधिकरण

बनाम

गफ्फार और एक अन्य

(2001 की द्वितीय अपील सं. 862)

तारीख 26 नवंबर, 2021

न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित नगर महापालिका अधिनियम, 1959] – भूमि पर कब्जा होना – राजस्व अभिलेखों में विवादित भूमि का नामांतरण दर्ज होना – अधिग्रहण – यदि विवादित भूमि का अधिग्रहण त्रुटिपूर्ण और नियमों के विरुद्ध है और वादी उक्त भूमि पर राजस्व अभिलेखों के माध्यम से अपना अधिकार, हक और कब्जा साबित कर देता है तो उक्त भूमि का अधिग्रहण रद्द किए जाने योग्य होगा और वादी का अधिकार, हक और कब्जा मान्य और विधिपूर्ण होगा ।

वर्तमान मामले में, सक्षिप्त तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थी ने 1989 की मूल वाद सं. 1552, गफ्फार बनाम अध्यक्ष, कानपुर विकास प्राधिकरण और एक अन्य के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया था । वादपत्र में यह अधिकथित किया था कि वादी कानपुर नगर के गांव चंदारी में स्थित खेत सं. 797 जिसका क्षेत्रफल 6 बीघा 13 बिस्वा है, का पूर्ण स्वामी और भूस्वामी है, जो वसीयत विलेख के अनुसरण में विहित रूप से रजिस्ट्रीकृत है और वादी का नाम तारीख 14 सितंबर, 1987 के तहसीलदार के आदेश के अनुसार 1391 फसली से 1396 फसली हेतु खतौनी के राजस्व अभिलेख में विहित रूप से नामांतरित किया गया है । वादी उक्त भूमि पर शांतिपूर्वक कब्जा है और जिसमें उसका पक्का घर है जो पिछले चालीस वर्षों से अस्तित्व में है, इसके

अतिरिक्त कुआं, मकबरा और बगीचा भी है । प्रतिवादी सं. 2 सहकारी आवास समिति होने के नाते विवादित भूमि का स्वामी और भूस्वामी नहीं है । प्रतिवादी सं. 2 एक काल्पनिक विक्रय विलेख निष्पादित करके अब वादी के स्वामित्व वाले और कब्जे वाली भूमि बलपूर्वक और अवैध रूप से कब्जा करना चाहता है और इस उद्देश्य से, प्रतिवादी सं. 2 वादी के स्वामित्व वाली और कब्जे वाली भूमि का सर्वेक्षण करा रहा है । प्रतिवादी सं. 1 अपने कर्मचारियों के माध्यम से भी सर्वेक्षण करा रहा है । प्रतिवादियों का वादी के स्वामित्व वाली भूमि पर कोई अधिकार, हक या हित नहीं और वादी का बहुत पहले से विधिपूर्वक कब्जा है और वादी के हित-पूर्वाधिकारियों के पूर्व बिना किसी बाधा के शांतिपूर्ण कब्जे में थी । प्रतिवादी सं. 1 ने लिखित अभिकथन फाइल किया जिसमें उसने वादपत्र के आरोपों से इनकार किया और आगे दलील दी कि चंदारी क्षेत्र में स्थित आराजी सं. 797 जिसका क्षेत्रफल 17 बीघा और 9 बिस्वा है, को तारीख 25 मार्च, 1963 के अधिनिर्णय सं. 38 द्वारा अधिग्रहित किया गया था और अधिग्रहित भूमि का कब्जा तारीख 29 अगस्त, 1963 को प्राप्त किया गया था । प्रतिवादी के पास विवादित भूमि पर बेसिक प्राथमिक पाठशाला के लिए एक योजना/स्कीम है । वादी ने विवादित भूमि पर कब्जा किया है और बिना किसी प्राधिकरण/अनुमति, अधिकार, हक या हित के एक पक्का मकान और चारदीवारी के साथ रसोई का निर्माण किया है । उक्त निर्माण बिना किसी स्वीकृत मानचित्र के है और वादी द्वारा मानचित्र अनुभाग से निर्माण के लिए कोई विधिवत् रूप से स्वीकृत योजना प्राप्त नहीं की गई है । भूखंड पर किए गए निर्माण को अनधिकृत निर्माण रूप में ध्वस्त किया जा सकता है और नगर महापालिका अधिनियम, 1959 के उपबंधों के अधीन ध्वस्त किए जाने योग्य है । अधिगृहित भूमि पर पहले से ही विकास कार्य हो चुका है और अनधिकृत निर्माण के कारण बाधा उत्पन्न हो रही है । साक्ष्य लेने के पश्चात्, विद्वान् विचारण न्यायालय ने वादी के विरुद्ध मुद्दा संख्या 2, 3 और 4 तय किया तथा उसके आधार पर दिनांक 6 नवंबर, 1998 के निर्णय एवं डिक्री द्वारा वाद को खारिज कर दिया । इससे व्यथित होकर वादी ने सिविल अपील सं. 376 वर्ष 1989 प्रस्तुत की । प्रथम अपीलीय न्यायालय ने दिनांक 9 जनवरी, 2001 के विवादित निर्णय एवं डिक्री को अपास्त किया तथा अपीलार्थी-वादी के मूल

वाद पर डिक्री पारित की तथा वादी के पक्ष में निषेधाज्ञा डिक्री पारित की, जिसमें प्रतिवादियों को विवादित संपत्ति पर वादी के कब्जे में हस्तक्षेप न करने के लिए प्रतिबंधित किया गया । अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता ने प्रारंभिक तर्क दिया कि अपीलीय न्यायालय का निर्णय आदेश 41, नियम 31 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के अनुरूप नहीं है । निर्धारण हेतु कोई बिन्दु नहीं बनाया गया है, अतः आदेश 41, नियम 31 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के अन्तर्गत निर्णय वैध नहीं है । विद्वान् अधिवक्ता ने उपरोक्त बिन्दु पर भागीरथ बनाम रामचन्द्र एवं अन्य द्वितीय अपील संख्या 43 वर्ष 1996 दिनांक 11 अप्रैल, 2019 को निर्णीत विनिश्चय का हवाला दिया तथा प्रार्थना की कि उपरोक्त आधार पर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री को निरस्त किया जाए तथा मामले को पुनः निर्णय के लिए प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेजा जाए । न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलकर्ता के विद्वान् अभिवक्ता ने आगे दलील दी है कि विवादित खसरा संख्या 797 को कानपुर विकास प्राधिकरण ने वर्ष 1967 में अधिगृहित किया है । प्रतिवादी ने इस संबंध में सुसंगत दस्तावेज फाइल किया है । प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष दिया है कि विवादित भूमि को कानपुर विकास प्राधिकरण ने वर्ष 1967 में अधिगृहीत किया था, इसलिए वादी का विवादित संपत्ति पर कोई अधिकार, हक या हित नहीं है, लेकिन प्रथम अपीली न्यायालय ने बिना किसी ठोस कारण के विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को उलट दिया है । इस संबंध में प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष भी अनुचित और विधिविरुद्ध है । प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी है कि प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से यह साबित होता है कि कानपुर विकास प्राधिकरण ने खसरा संख्या 797 का केवल 12 बीघा 9 बिस्वा क्षेत्रफल ही अभिगृहीत किया है तथा शेष 6 बीघा 13 बिस्वा क्षेत्रफल दर्शित नहीं किया गया है । अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है, जिससे यह दर्शित हो कि अपीलार्थी/प्रतिवादी ने खसरा संख्या 797 का सम्पूर्ण क्षेत्रफल अभिगृहीत है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी

कि अधिग्रहण कार्यवाही से संबंधित कब्जा प्रमाण-पत्र भी फाइल है, जिसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि खसरा संख्या 797 का 6 बीघा 13 बिस्वा क्षेत्रफल कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा अभिगृहीत नहीं किया गया है । इस संबंध में विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा किया गया निष्कर्ष अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के विरुद्ध था तथा प्रथम अपीली अभिलिखित न्यायालय द्वारा इसे सही प्रकार से उलट दिया गया है । प्रतिवादी संख्या 1 ने अपने लिखित कथन में दलील दी है कि चंदारी क्षेत्र में स्थित आराजी संख्या 797 जिसका क्षेत्रफल 17 बीघा 9 बिस्वा है, को दिनांक 25.3.1963 विनिश्चय द्वारा अधिगृहीत किया गया था । अधिगृहीत भूमि का कब्जा दिनांक 20.8.1963 को प्राप्त किया गया था । प्रतिवादी संख्या 1 की उपरोक्त दलील प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से साबित नहीं होती है, क्योंकि कब्जा प्रमाण पत्र में खसरा संख्या 797 मिनजुमला का अधिगृहीत क्षेत्रफल मात्र 11 बीघा 9 बिस्वा अभिलिखित है । अभिलेखों में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह साबित हो सके कि आराजी संख्या 797 का 17 बीघा 9 बिस्वा क्षेत्रफल कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा अधिगृहीत किया गया है जैसा कि प्रतिवादी संख्या 1 के लिखित कथन में कहा गया है । इसके विपरीत, अधिशासी अभियंता (योजना) कानपुर विकास प्राधिकरण, कानपुर विकास प्राधिकरण कानपुर के हस्ताक्षर से वादी गफ्फार को संबोधित पत्र संख्या डी/12/एए आईपीएल/87 दिनांक 27.7.1987 जारी किया गया है, जिसमें उल्लेख किया गया है कि, “आपको सूचित किया जाता है कि आराजी संख्या 797 ग्राम चंदारी क्षेत्रफल 6 बीघा 13 बिस्वा कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा अधिगृहीत नहीं किया गया है ।” विद्वान् विचारण न्यायालय ने इस संबंध में दस्तावेजी साक्ष्य को गलत पढ़ा है । विद्वान् विचारण न्यायालय का यह मत है कि वादी ने स्वयं भूमि अधिग्रहण की बात स्वीकार की है, भी गलत है, क्योंकि वादी ने कथन किया है कि कानपुर विकास प्राधिकरण ने आराजी संख्या 797 में केवल 11 बीघा और 9 बिस्वा भूमि ही अधिगृहीत की है । वादी ने यह स्वीकार नहीं किया है कि कि आराजी संख्या 797 में से 17 बीघा और 9 बिस्वा भूमि कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा अधिगृहीत की गई है या विवादित संपत्ति कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा अधिगृहीत की गई

है । उपरोक्त कारणों से विद्वान् विचारण न्यायालय का निष्कर्ष गलत और विधिविरुद्ध है । न्यायालय ने इस बिन्दु पर भी साक्ष्यों की सही तरह से मूल्यांकन किया है और विद्वान् अपीली न्यायालय द्वारा अभिलिखित किया गया निष्कर्ष कि कानपुर विकास प्राधिकरण ने आराजी संख्या 797 में से केवल 11 बीघा और 9 बिस्वा भूमि ही अधिगृहीत की है, न्यायोचित और उचित है । विद्वान् प्रथम अपीली न्यायालय के उपरोक्त निष्कर्ष में कोई अवैधता या अनुचितता नहीं है । अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह साबित होता है कि प्रतिवादी-वादी विवादित संपत्ति पर कब्जा रखने वाला पंजीकृत भूमिधारी है । अपीलार्थी/प्रतिवादी यह साबित करने में विफल रहा है कि विवादित भूमि उसके द्वारा अर्जित की गई थी । अपीलार्थी/प्रतिवादी ने विवादित संपत्ति पर प्रतिवादी-वादी के कब्जे को भी स्वीकार किया है । विद्वान् विचारण न्यायालय, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का उचित मूल्यांकन करने में विफल रहा है तथा विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री त्रुटिपूर्ण थी । विद्वान् अपीली न्यायालय द्वारा उपरोक्त मुद्दों पर अभिलिखित किए गए निष्कर्ष साक्ष्य के अनुसार तथा न्यायसंगत एवं उचित हैं । विद्वान् अपीली न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की न तो गलत निर्वचन की है और न ही गलत अर्थ निकाला है तथा न ही किसी अस्वीकार्य साक्ष्य का अवलम्ब लिया है और न ही किसी स्वीकार्य साक्ष्य की अनदेखी की है । विद्वान् अपीली न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में कोई अनुचितता या अवैधता नहीं है । इसलिए, विरचित विधि के दोनों प्रश्न अपीलार्थी के विरुद्ध विनिश्चित किए जाते हैं । इस द्वितीय अपील में कोई गुणागुण नहीं है और खारिज किए जाने योग्य है । (पैरा 8, 9, 10, 11 और 12)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2001 की द्वितीय अपील सं. 862.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री मनमोहन दास अग्रवाल, दीपक जयसवाल और शशि शेखर मिश्रा

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री ईप्पाक जयसवाल, आजाद

खान, बी. एन. राय, एल. एम. सिंह, मानस भार्गव, मनोज, मनोज श्री-वास्तवा, पी. के. जैन, पंकज अग्रवाल और सुफिया साबा

न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी – यह द्वितीय अपील 1998 की सिविल अपील सं. 376, गफ्फार बनाम कानपुर विकास प्राधिकरण और एक अन्य, कानपुर के 17वें अपर जिला न्यायाधीश तारीख 9 जनवरी, 2001 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है । आक्षेपित निर्णय द्वारा प्रथम अपीली न्यायालय ने अपील स्वीकार कर ली है और 1989 के ओ.एस. सं. 1552, गफ्फार बनाम कानपुर विकास प्राधिकरण में विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया है और मूल वाद को डिक्री कर दिया है तथा प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) को विवादित संपत्ति पर अपीलार्थी-वादी के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोक दिया है ।

2. संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थी ने 1989 की मूल वाद सं. 1552, गफ्फार बनाम अध्यक्ष, कानपुर विकास प्राधिकरण और एक अन्य के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया था । वादपत्र में यह अधिकथित किया था कि वादी कानपुर नगर के गांव चंदारी में स्थित खेत सं. 797 जिसका क्षेत्रफल 6 बीमा 13 बिस्वा है, का पूर्ण स्वामी और भूस्वामी है, जो वसीयत विलेख के अनुसरण में विहित रूप से रजिस्ट्रीकृत है और वादी का नाम तारीख 14 सितंबर, 1987 के तहसीलदार के आदेश के अनुसार 1391 फसली से 1396 फसली हेतु खतौनी के राजस्व अभिलेख में विहित रूप से नामांतरित किया गया है । वादी उक्त भूमि पर शांतिपूर्वक कब्जा है और जिसमें उसका पक्का घर है जो पिछले चालीस वर्षों से अस्तित्व में है, इसके अतिरिक्त कुआं, मकबरा और बगीचा भी है । प्रतिवादी सं. 2 सहकारी आवास समिति होने के नाते विवादित भूमि का स्वामी और भूस्वामी नहीं है । प्रतिवादी सं. 2 एक काल्पनिक विक्रय विलेख निष्पादित करके अब वादी के स्वामित्व वाले और कब्जे वाली भूमि बलपूर्वक और अवैध रूप से कब्जा करना चाहता है और इस उद्देश्य से, प्रतिवादी सं. 2 वादी के स्वामित्व वाली और कब्जे वाली भूमि का सर्वेक्षण करा रहा है । प्रतिवादी सं. 1

अपने कर्मचारियों के माध्यम से भी सर्वेक्षण करा रहा है । प्रतिवादियों का वादी के स्वामित्व वाली भूमि पर कोई अधिकार, हक या हित नहीं और वादी का बहुत पहले से विधिपूर्वक कब्जा है और वादी के हित-पूर्वाधिकारियों के पूर्व बिना किसी बाधा के शांतिपूर्ण कब्जे में थी ।

प्रतिवादी सं.1 ने लिखित अभिकथन फाइल किया जिसमें उसने वादपत्र के आरोपों से इनकार किया और आगे दलील दी कि चंदारी क्षेत्र में स्थित आराजी सं. 797 जिसका क्षेत्रफल 17 बीघा और 9 बिस्वा है, को तारीख 25 मार्च, 1963 के अधिनिर्णय सं. 38 द्वारा अधिग्रहित किया गया था और अधिग्रहित भूमि का कब्जा तारीख 29 अगस्त, 1963 को प्राप्त किया गया था । प्रतिवादी के पास विवादित भूमि पर बेसिक प्राथमिक पाठशाला के लिए एक योजना/स्कीम है । वादी ने विवादित भूमि पर किया है और बिना किसी प्राधिकरण/अनुमति, अधिकार, हक या हित के एक पक्का मकान और चारदीवारी के साथ रसोई का निर्माण किया है । उक्त निर्माण बिना किसी स्वीकृत मानचित्र के है और वादी द्वारा मानचित्र अनुभाग से निर्माण के लिए कोई विधिवत् रूप से स्वीकृत योजना प्राप्त नहीं की गई है । भूखंड पर किए गए निर्माण को अनधिकृत निर्माण रूप में ध्वस्त किया जा सकता है और नगर महापालिका अधिनियम, 1959 के उपबंधों के अधीन ध्वस्त किए जाने योग्य है । अधिगृहित भूमि पर पहले से ही विकास कार्य हो चुका है और अनधिकृत निर्माण के कारण बाधा उत्पन्न हो रही है । विचारण न्यायालय ने निम्नलिखत 8 विवाद्यक विरचित किए हैं :–

1. क्या वाद मूल्यांकन के अधीन है और संदत्त की गई न्यायालय फीस अपर्याप्त है ?

2. क्या वादी तहसील व जिला कानपुर के ग्राम चंदारी में खसरा संख्या 797 क्षेत्रफल 6 बीघा 13 बिस्वा के कब्जे का स्वामी है और उस पर स्थित उसका चालीस वर्ष पुराना निर्माण है ?

3. क्या प्रतिवादी सं. 2 को विवादित संपत्ति अंतरित करने को अधिकार है ?

4. विवादित संपत्ति प्रतिवादी स.1 विधिक रूप से अधिगृहीत की गई है ? यदि हां, तो कैसे और किस रीति से ।

5. क्या भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 के अधीन कोई विधिमान्य नोटिस भूमि अधिग्रहण अधिनियम के अधीन जारी किया गया है ? यदि हां, तो इसका प्रभाव ।

6. क्या नगर महापालिका ने निर्माण के संबंध में कोई नोटिस जारी किया है ? यदि हां, तो उसका प्रभाव ।

7. क्या वादी का निर्माण कार्य विधिविरुद्ध है ?

8. क्या वादी किसी अनुतोष का हकदार है ?

साक्ष्य लेने के पश्चात्, विद्वान् विचारण न्यायालय ने वादी के विरुद्ध मुद्दा संख्या 2, 3 और 4 तय किया तथा उसके आधार पर दिनांक 6 नवंबर, 1998 के निर्णय एवं डिक्री द्वारा वाद को खारिज कर दिया । इससे व्यथित होकर वादी ने सिविल अपील सं. 376 वर्ष 1989 प्रस्तुत की । प्रथम अपीलीय न्यायालय ने दिनांक 9 जनवरी, 2001 के विवादित निर्णय एवं डिक्री को अपास्त किया तथा अपीलार्थी-वादी के मूल वाद पर डिक्री पारित की तथा वादी के पक्ष में निषेधाज्ञा डिक्री पारित की, जिसमें प्रतिवादियों को विवादित संपत्ति पर वादी के कब्जे में हस्तक्षेप न करने के लिए प्रतिबंधित किया गया ।

3. अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता ने प्रारंभिक तर्क दिया कि अपीलीय न्यायालय का निर्णय आदेश 41, नियम 31 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के अनुरूप नहीं है । निर्धारण हेतु कोई बिन्दु नहीं बनाया गया है, अतः आदेश 41, नियम 31 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के अन्तर्गत निर्णय वैध नहीं है । विद्वान् अधिवक्ता ने उपरोक्त बिन्दु पर भागीरथ बनाम रामचन्द्र एवं अन्य द्वितीय अपील संख्या 43 वर्ष 1996 दिनांक 11 अप्रैल, 2019 को निर्णीत विनिश्चय का हवाला दिया तथा प्रार्थना की कि उपरोक्त आधार पर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री को निरस्त किया जाए तथा मामले को पुनः निर्णय के लिए प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेजा जाए ।

उपरोक्त निर्णय के पैरा 3 में इस न्यायालय ने टिप्पणी की है कि :–

"अपील न्यायालय/उच्च न्यायालय द्वारा नियमित प्रथम

अपील का निपटारा किस प्रकार किया जाना चाहिए, इस पर इस न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों में विचार किया है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 41 मूल डिक्री से अपीलों से संबंधित है । विभिन्न नियमों में, नियम 31 यह अनिवार्य करता है कि अपील न्यायालय के निर्णय में यह कहा जाएगा –

(क) निर्धारण के लिए बिन्दु ;

(ख) उस पर निर्णय ;

(ग) निर्णय के कारण ; और

(घ) जहां अपील को उलट दिया गया है या उसमें परिवर्तन किया गया है, वहां अपीलकर्ता किस राहत का हकदार है ।"

पूर्वोक्त निर्णय के पैरा संख्या 32 में, इस न्यायालय ने एच. सिद्दकी **बनाम** वी. ए. रामलिंगम (2011) 4 एस. सी. सी. 240 मामले में, उच्चतम न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है और पूर्वोक्त निर्णय के पैरा 21 को उद्धृत किया है जो इस प्रकार है :–

"उक्त उपबंध अपीली न्यायालय के लिए दिशा-निर्देश उपलब्ध कराते हैं कि न्यायालय को किस प्रकार मामले का विचारण प्रक्रिया और विनिश्चय करना है । उपबंधों को इस प्रकार परिशीलन करने की अपेक्षा की जाती है कि उनमें उल्लिखित विभिन्न विशिष्टियों को विचार में लिया जाए । इस प्रकार, अपीली न्यायालय के निर्णय से यह प्रकट होना चाहिए कि न्यायालय ने तथ्यों/साक्ष्यों को उचित रूप से मूल्यांकन किया है, अपने विवेक का प्रयोग किया है तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करते हुए मामले का विनिश्चय किया है । यदि अपीली न्यायालय का निर्णय मामले के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रासंगिक साक्ष्यों के स्वतंत्र निर्धारण पर आधारित है तथा अपीली न्यायालय के निष्कर्ष सुस्थापित तथा पूर्णतः विश्वसनीय हैं, तो यह उक्त उपबंधों का पर्याप्त अनुपालन माना जाएगा । अपीली न्यायालय के लिए पक्षों के साक्ष्यों का स्वतंत्र रूप से मूल्यांकन करना तथा न्यायनिर्णयन के लिए उद्धृत प्रासंगिक बिंदुओं तथा उन बिंदुओं पर साक्ष्यों के प्रभाव पर विचार करना अनिवार्य है ।"

अपीली न्यायालय के निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अपीली न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सभी साक्ष्यों की सराहना की है तथा उन पर चर्चा की है तथा निर्णय के लिए उठे प्रासंगिक बिंदुओं पर विचार किया है । यद्यपि अपीली न्यायालय द्वारा कोई विशिष्ट बिंदु नहीं बनाया गया है, लेकिन आदेश 41, नियम 31 सी.पी.सी. के प्रावधानों का पर्याप्त अनुपालन किया गया है तथा मामले को वापस भेजने की कोई आवश्यकता या पर्याप्त आधार नहीं है ।

4. इस द्वितीय अपील के निपटारे के लिए निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्न है :–

(i) क्या प्रथम अपीली न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की गलत व्याख्या की है तथा किसी अस्वीकार्य साक्ष्य पर भरोसा किया है तथा किसी स्वीकार्य साक्ष्य की अनदेखी की है ?

(ii) क्या प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अनुचित हैं तथा संयोग और अनुमान पर आधारित हैं ?

5. अपीलकर्ता के विद्वान् कांउसेल ने सर्वप्रथम यह दलील दी कि प्रतिवादी/वादी ने वसीयत विलेख के आधार पर मूल वाद फाइल किया है, लेकिन उक्त मूल दस्तावेज कभी भी विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया और विधिवत् रूप से साबित नहीं किया गया । विचारण न्यायालय ने इस संबंध में वादी के विरुद्ध निष्कर्ष दिया है, लेकिन प्रथम अपीली न्यायालय ने बिना किसी उचित कारण के उक्त निष्कर्ष को अपास्त कर दिया है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि वादी के स्वामित्व के हक के बारे में अभिलेख पर कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है । वादी का हक किसी भी ठोस साक्ष्य से साबित नहीं किया गया लेकिन विद्वान् अपीली न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी, विवादित संपत्ति के कब्जे सहित स्वामी है । अपीली न्यायालय का निष्कर्ष अनुचित और विधिविरुद्ध है ।

6. दूसरी ओर, प्रतिवादियों के विद्वान् अधिवक्ता ने दलील दी कि वादी के पक्ष में वसीयत एक पंजीकृत दस्तावेज है, जो अन्य मामले में फाइल किया गया था । वादी ने इसकी प्रमाणित प्रति फाइल की है । विद्वान् अधिवक्ता ने यह भी दलील दी कि वादी विवादित खसरा संख्या

797 क्षेत्रफल 6 बीघा 13 बिस्वा का पंजीकृत धारक है तथा उसने खतौनी फाइल की है, जो शीर्षक का दस्तावेज है, इसलिए, वादी का हक विधिवत् रूप से साबित होता है ।

7. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से यह प्रतीत होता है कि विवादित भूखंड एक कृषि भूखंड था तथा उसके पूर्व स्वामी सुलेमान के कानूनी प्रतिनिधि के नाम पर अभिलिखित था । पंजीकृत वसीयत के आधार पर वादी ने राजस्व अभिलेखों में अपना नाम अभिलिखित कराया तथा वादी ने खतौनी को फाइल किया है, जिसमें उसके पक्ष में नामांतरण का आदेश अभिलिखित है । वादी ने नामांतरण कार्यवाही में पारित नायब तहसीलदार के आदेश की प्रति भी फाइल की है, जिसके आधार पर उसका नाम राजस्व अभिलेखों में अभिलिखित किया गया है । इस दस्तावेज (खतौनी) की वैधता को प्रतिवादियों या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किसी भी स्तर पर चुनौती नहीं दी गई है । अतः अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि वादी पंजीकृत भूमिधर है तथा उसका नाम राजस्व अभिलेख (खतौनी) में विधिवत् रूप से अभिलिखित है, जो कि हक का दस्तावेज है । यह भी स्थापित है कि कृषि भूखंड के संबंध मे हक के प्रश्न पर सिविल न्यायालय निर्णय नहीं कर सकता है तथा यह राजस्व न्यायालयों का एकमात्र अधिकार क्षेत्र है । मूल वसीयत विलेख फाइल करने या उसे विचारण न्यायालय के समक्ष कराने की कई आवश्यकता नहीं थी । उक्त कार्यवाही नायब तहसीलदार के समक्ष न्यायालय के समक्ष विधिवत् रूप में संचालित की गई है । तथा इसके आधार पर वादी का नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने पूर्वोक्त विधिक पहलू पर विचार नहीं किया है तथा यह मत व्यक्त किया गया कि वादी ने मूल वसीयत फाइल नहीं की है तथा उसे विचारण न्यायालय के समक्ष साबित नहीं कराया गया है तथा इस आधार पर उसके स्वामित्व के दावे को खारिज कर दिया गया है । विचारण न्यायालय का उपरोक्त निष्कर्ष विधिविरुद्ध है । विद्वान् अपीली न्यायालय ने सही रूप से अभिनिर्धारित किया है कि वादी, विवादित संपत्ति का स्वामी है, क्योंकि वह पंजीकृत पट्टेदार है तथा उपरोक्त निष्कर्ष में कोई अवैधता या अनुचितता नहीं है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि वादी

का विवादित संपत्ति पर कब्जा नहीं है, क्योंकि उसने विवादित संपत्ति पर अपने निर्माण की अवधि का खुलासा नहीं किया है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने वादी द्वारा कब्जे के संबंध में प्रस्तुत अन्य साक्ष्यों पर भी अविश्वास किया है । विद्वान् विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष भी विधिक दृष्टि से दूषित है । प्रतिवादी संख्या 1 ने अपने लिखित कथन में वादी के निर्माणों को स्वीकार किया है । अत: प्रतिवादी संख्या 1 के स्वीकृति से विवादित संपत्ति पर वादी का कब्जा साबित हो जाता है तथा किसी अन्य साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है । इस संबंध में अपीली न्यायालय द्वारा अभिलिखित किया गया अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अनुसार तथा उचित एवं विधिक है ।

8. अपीलकर्ता के विद्वान् अभिवक्ता ने आगे दलील दी है कि विवादित खसरा संख्या 797 को कानपुर विकास प्राधिकरण ने वर्ष 1967 में अधिगृहित किया है । प्रतिवादी ने इस संबंध में सुसंगत दस्तावेज फाइल किया है । प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष दिया है कि विवादित भूमि को कानपुर विकास प्राधिकरण ने वर्ष 1967 में अधिगृहीत किया था, इसलिए वादी का विवादित संपत्ति पर कोई अधिकार, हक या हित नहीं है, लेकिन प्रथम अपीली न्यायालय ने बिना किसी ठोस कारण के विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को उलट दिया है । इस संबंध में प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष भी अनुचित और विधिविरुद्ध है ।

9. प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी है कि प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से यह साबित होता है कि कानपुर विकास प्राधिकरण ने खसरा संख्या 797 का केवल 12 बीघा 9 बिस्वा क्षेत्रफल ही अभिगृहीत किया है तथा शेष 6 बीघा 13 बिस्वा क्षेत्रफल दर्शित नहीं किया गया है । अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है, जिससे यह दर्शित हो कि अपीलार्थी/प्रतिवादी ने खसरा संख्या 797 का सम्पूर्ण क्षेत्रफल अभिगृहीत है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि अधिग्रहण कार्यवाही से संबंधित कब्जा प्रमाण-पत्र भी फाइल है, जिसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि खसरा संख्या 797 का 6 बीघा 13 बिस्वा क्षेत्रफल कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा अभिगृहीत नहीं किया गया

है । इस संबंध में विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा किया गया निष्कर्ष अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के विरुद्ध था तथा प्रथम अपीली अभिलिखित न्यायालय द्वारा इसे सही प्रकार से उलट दिया गया है ।

10. प्रतिवादी संख्या 1 ने अपने लिखित कथन में दलील दी है कि चंदारी क्षेत्र में स्थित आराजी संख्या 797 जिसका क्षेत्रफल 17 बीघा 9 बिस्वा है, को दिनांक 25.3.1963 विनिश्चय द्वारा अधिगृहीत किया गया था । अधिगृहीत भूमि का कब्जा दिनांक 20.8.1963 को प्राप्त किया गया था । प्रतिवादी संख्या 1 की उपरोक्त दलील प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से साबित नहीं होती है, क्योंकि कब्जा प्रमाण पत्र में खसरा संख्या 797 मिनजुमला का अधिगृहीत क्षेत्रफल मात्र 11 बीघा 9 बिस्वा अभिलिखित है । अभिलेखों में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह साबित हो सके कि आराजी संख्या 797 का 17 बीघा 9 बिस्वा क्षेत्रफल कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा अधिगृहीत किया गया है जैसा कि प्रतिवादी संख्या 1 के लिखित कथन में कहा गया है । इसके विपरीत, अधिशासी अभियंता (योजना), कानपुर विकास प्राधिकरण, कानपुर के हस्ताक्षर से वादी गफ्फार को संबोधित पत्र संख्या डी/12/एए आईपीएल/87 दिनांक 27.7.1987 जारी किया गया है, जिसमें उल्लेख किया गया है कि, “आपको सूचित किया जाता है कि आराजी संख्या 797 ग्राम चंदारी क्षेत्रफल 6 बीघा 13 बिस्वा कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा अधिगृहीत नहीं किया गया है ।” विद्वान् विचारण न्यायालय ने इस संबंध में दस्तावेजी साक्ष्य को गलत पढ़ा है । विद्वान् विचारण न्यायालय का यह मत है कि वादी ने स्वयं भूमि अधिग्रहण की बात स्वीकार की है, भी गलत है, क्योंकि वादी ने कथन किया है कि कानपुर विकास प्राधिकरण ने आराजी संख्या 797 में केवल 11 बीघा और 9 बिस्वा भूमि ही अधिगृहीत की है । वादी ने यह स्वीकार नहीं किया है कि कि आराजी संख्या 797 में से 17 बीघा और 9 बिस्वा भूमि कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा अधिगृहीत की गई है या विवादित संपत्ति कानपुर विकास प्राधिकरण द्वारा अधिगृहीत की गई है । उपरोक्त कारणों से विद्वान् विचारण न्यायालय का निष्कर्ष गलत और विधिविरुद्ध है । न्यायालय ने इस बिन्दु पर भी साक्ष्यों की सही तरह से मूल्यांकन किया है और विद्वान् अपीली न्यायालय द्वारा अभिलिखित किया गया

निष्कर्ष कि कानपुर विकास प्राधिकरण ने आराजी संख्या 797 में से केवल 11 बीघा और 9 बिस्वा भूमि ही अधिगृहीत की है, न्यायोचित और उचित है । विद्वान् प्रथम अपीली न्यायालय के उपरोक्त निष्कर्ष में कोई अवैधता या अनुचितता नहीं है ।

11. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह साबित होता है कि प्रतिवादी-वादी विवादित संपत्ति पर कब्जा रखने वाला पंजीकृत भूमिधारी है । अपीलार्थी/प्रतिवादी यह साबित करने में विफल रहा है कि विवादित भूमि उसके द्वारा अर्जित की गई थी । अपीलार्थी/प्रतिवादी ने विवादित संपत्ति पर प्रतिवादी-वादी के कब्जे को भी स्वीकार किया है । विद्वान् विचारण न्यायालय, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का उचित मूल्यांकन करने में विफल रहा है तथा विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री त्रुटिपूर्ण थी । विद्वान् अपीली न्यायालय द्वारा उपरोक्त मुद्दों पर अभिलिखित किए गए निष्कर्ष साक्ष्य के अनुसार तथा न्यायसंगत एवं उचित हैं ।

12. विद्वान् अपीली न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की न तो गलत निर्वचन की है और न ही गलत अर्थ निकाला है तथा न ही किसी अस्वीकार्य साक्ष्य का अवलम्ब लिया है और न ही किसी स्वीकार्य साक्ष्य की अनदेखी की है । विद्वान् अपीली न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में कोई अनुचितता या अवैधता नहीं है । इसलिए, विरचित विधि के दोनों प्रश्न अपीलार्थी के विरुद्ध विनिश्चित किए जाते हैं । इस द्वितीय अपील में कोई गुणागुण नहीं है और खारिज किए जाने योग्य है ।

तदनुसार, द्वितीय अपील खारिज की जाती है ।

पक्षकारों को अपने खर्चे स्वयं वहन करने होंगे ।

द्वितीय अपील खारिज की गई ।

मही./क.

शिव प्रसाद वर्मा और अन्य

बनाम

देव नारायण सिंह और अन्य

(2013 की प्रथम अपील आदेश सं. 44)

तारीख 27 नवंबर, 2021

न्यायमूर्ति जे. जे. मुनिर

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 173 – अपीलार्थी के साथ दुर्घटना कारित होना – बस की टक्कर से चोटें आना – अस्पताल ले जाते हुए मृत्यु होना – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी – मृतक की आश्रित विधवा द्वारा दावा याचिका फाइल किया जाना – बीमा कंपनी द्वारा दावे का विरोध किया जाना – दुर्घटना के समय पंजीकृत यान का बीमा होना – यदि तथ्यों से यह साबित हो जाता है कि दावा याचिका ठीक प्रकार से फाइल की गई है तो उन तथ्यों के आधार पर क्षतिपूर्ति की राशि का भुगतान करना अनिवार्य है जो मामले की परिस्थितियों और प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य पर विचार करते हुए अवधारित की जाती है ।

वर्तमान मामले में, संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि मोटर दुर्घटना दावा तारीख 24 नवंबर, 2011 को शाम 5:30 बजे हुई एक दुर्घटना से उद्भूत हुई है । पीड़ित का नाम सुरेन्द्र कुमार वर्मा था । वर्मा अपना काम करने के बाद फैजाबाद से अपने ससुराल जा रहा था । वह अपने ससुराल जिला फैजाबाद, पुलिस थाना कैंट के गांव पुरे काशीनाथ, हरीपुर जलालाबाद जा रहा था, जहां उनके ससुराल वाले रहते थे । वर्मा को एक टाटा बस ने टक्कर मारी जिसका पंजीकरण संख्या यू पी 42बी 1968 है, जिसके बारे में बताया गया कि उसका चालक उसे उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक से चला रहा था । वर्मा, जो सड़क के किनारे खड़े थे, बस ने टक्कर मार दी और उसके पहियों के नीचे कुचल गया । उसको गंभीर चोटें आईं । राहगीरों ने उसको जिला अस्पताल, फैजाबाद पहुंचाया, परन्तु अस्पताल ले जाते समय उसकी मृत्यु हो गई । दावेदार-अपीलार्थी-

फूला देवी वर्मा की विधवा है । दावे में यह प्रकथन किया गया है कि दुर्घटना के समय वर्मा की आयु 30 वर्ष थी और वह एक स्वस्थ नौजवान था । वह राज मिस्त्री के रूप में लाभकारी स्वरोजगार करता था और खेती भी करता था । उसकी आय प्रतिमास 9,000/- रुपए थी । दावा याचिका अकेले वर्मा की विधवा द्वारा फाइल की गई थी, यद्यपि प्रतिवादियों के कॉलम में मृतक की विधवा के अतिरिक्त शिव प्रसाद वर्मा, उसके पिता, बिटन देवी, उनकी माता, विकास वर्मा, विशाल वर्मा और अभिषेक वर्मा, उनके भाई भी दर्शाए गए हैं । दावा ब्याज सहित 47,80,000/- रुपए की राशि के लिए किया गया है । इस निर्णय और आदेश के विरुद्ध बीमा कम्पनी द्वारा अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील आंशिक रूप से मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस मामले पर अधिक सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है । अधिकरण द्वारा अभिलिखित किया गया यह निष्कर्ष कि अभि. सा. 2 केशव राम मोटरसाइकिल चला रहा था और उसकी उपस्थिति विश्वसनीय नहीं है क्योंकि उसने दुर्घटना मे शामिल यान, बस का पीछा नहीं किया और उसे रुकने के लिए मजबूर नहीं किया । अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करने पर बहुत ही बेतुका अनुमान लगाया है कि यह सुनिश्चित है कि मोटरसाइकिल की गति बस की गति से अधिक थी और इसलिए, साक्षी द्वारा बस का पीछा न करना और उसे न पकड़ना उसकी उपस्थिति को संदिग्ध बनाता है । यह हमेशा आवश्यक नहीं है कि मोटरसाइकिल बस से अधिक तेज चले । यह सड़क की स्थिति और कई अन्य कारकों पर निर्भर करता है । यह मोटरसाइकिल के साथ-साथ बस की स्थिति और तकनीकी विशिष्टताओं पर भी निर्भर करता है । अधिकरण द्वारा भी इसके बारे में कोई सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है । बस जैसे बड़े यान का दोपहिया यान का पीछा करना और उसे रोकना कोई मामूली काम नहीं है और एक अप्रशिक्षित व्यक्ति में ऐसा करने का साहस या आवश्यक कौशल कभी नहीं हो सकता है । उसे अपनी जान का भी डर हो सकता है कि एक बार जानलेवा बस, जवाबदेही से बचने के लिए, दुगुनी जानलेवा बन सकती है । ये सभी संभावनाएं हैं जो साक्षी को उस रास्ते को चुनने से

विधिसम्मत रूप से रोक सकती है जिसे अधिकरण ने इस साक्षी के परिसाक्ष्य के मिथ्या होने के बारे में निर्णायक माना है । पुनः, यह न्यायालय कोई अंतिम मत व्यक्त करने से अपने को विरत करता है, परन्तु यह इंगित करना चाहता है कि ये ऐसी संभावनाएं हैं जिनके लिए अधिक वस्तुनिष्ठ अवधारण करने की आवश्यकता है । पुलिस को मामले की सूचना देने में उसकी निष्क्रियता के लिए इस साक्षी की उपस्थिति के विरुद्ध निकाले गए प्रतिकूल निष्कर्ष को भी अनावश्यक महत्व दिया गया है । घटनाओं के क्रम में, एक बार जब साक्षी ने सोचा कि उसे कुटुंब के पास जाना चाहिए, तो पुलिस को सूचित करना एक गौण प्राथमिकता बन सकती थी । पीड़ित को पहले ही मौके पर विद्यमान व्यक्तियों द्वारा अस्पताल ले जाया जा चुका था, और पुलिस किसी भी तरह अस्पताल पहुंच चुकी थी । इसके बाद अधिकरण द्वारा एक और निष्कर्ष अभिलिखित किया गया है, जिसमें कहा गया है कि अभि. सा. 2 ने इस तथ्य को स्वीकर किया है कि उसकी मोटरसाइकिल की हेडलाइट काम कर रही थी, परन्तु बस की नहीं । इसलिए, शाम को 5:30 बजे जब अंधेरा था, तब साक्षी द्वारा यान का पंजीकरण संख्या नोट करना अस्वाभाविक था । यह समझ से परे है कि बस की खराब हेडलाइट साक्षी को, जिसकी मोटरसाइकिल की हेडलाइट काम कर रही थी, उसका पंजीकरण नंबर नोट करने से कैसे रोक सकती थी । अधिकरण द्वारा अभिलिखित किया गया यह निष्कर्ष अनुचित है । यह संभव है कि साक्षी ने तारीख 24 नवंबर, 2011 की शाम 5:30 बजे, अंधेरा होने के बावजूद, 10-15 फीट की दूरी से अपनी मोटरसाइकिल की हेडलाइट का उपयोग करके बस की पंजीकरण संख्या नोट कर ली हो, जिससे बस की पीछे की नंबर प्लेट पर प्रकाश पड़ा होगा । अभिलिखित किए गए अन्य निष्कर्षों में ईंट भट्ठा, छात्रों का छात्रावास या महेन्द्र ट्रैक्टर एजेंसी द्वारा नियोजित सुरक्षाकर्मियों को दुर्घटना के तथ्य को साबित करने के लिए दावेदार द्वारा साक्षी के रूप में नहीं बुलाया गया । न्यायालय की राय में, जब अभि. सा. 2 ने दुर्घटना के प्रत्यक्षदर्शी के रूप में साक्ष्य दिया था, तो बीमा कंपनी के लिए दावेदारों के मामले का खंडन करने के लिए सबूत प्रस्तुत करना अनिवार्य था । अभि. सा. 2 का साक्ष्य, भारतीय

साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 101 के समान सिद्धांत पर दावेदारों के दायित्व का निर्वहन करने के लिए पर्याप्त है । यद्यपि, अधिनियम का अंतिम उल्लेख अधिकरण के समक्ष कार्यवाही पर स्वतः से लागू नहीं होता है, परन्तु यह सुस्थिर सिद्धांत है । साबित करने के लिए किसी विवाद्यक पर साक्ष्य प्रस्तुत करने का भार किसी विशेष समय पर एक पक्षकार या दूसरे के कंधों पर होता है । यह विचारण के दौरान बदलता रहता है और यह उस सबूत के भार से अलग है, जो किसी विवाद्यक पर निर्वहन किया जाने वाला समग्र भार होता है । यहां, जैसा कि पहले ही कहा गया है, बीमा कंपनी ने कोई सबूत प्रस्तुत नहीं किया है । अधिकरण ने, बीमा कंपनी या उस मामले के लिए, चालक या स्वामी द्वारा प्रस्तुत किसी भी सबूत की अनुपस्थिति में, दावेदारों के मामले पर अविश्वास करके विधि की स्पष्ट त्रुटि की है । अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए विवाद्यक संख्या 1 पर निष्कर्ष प्रत्येक कोण से अत्यधिक अनुमानों पर आधारित है । जो भी हो, यह न्यायालय इस मामले में अंतिम राय व्यक्त नहीं करना चाहता है, क्योंकि हमारा मानना है कि यह मामला अधिकरण के पास वापस जाना चाहिए, जिसे इसका पुनः विचारण और अवधारण करना चाहिए, तथा दोनों पक्षकारों को ऐसे साक्ष्य के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए, जैसा उन्हें सलाह दी जाए । इस न्यायालय ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया है कि विवाद्यक संख्या 2 और 3 पर निष्कर्ष, सरसरी तौर पर अभिलिखित किए गए हैं, क्योंकि अधिकरण का दृष्टिकोण विवाद्यक संख्या 1 पर उसके निष्कर्षों के प्रतिबिंब में था । बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल की दलील है कि उन निष्कर्षों पर भी नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है, ताकि उन्हें अपने लिखित कथन में उठाए गए अभिवाकों के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर मिल सके । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलीलें दी हैं कि अधिकरण ने दावा किए गए प्रतिकर की मात्रा के बारे में कोई विवाद्यक विरचित नहीं किया है, जिसे विरचित किया जाना चाहिए था । यह सत्य है कि यदि दावा सफल होता है, तो अन्य निष्कर्षों पर अधिमत के परिणामस्वरूप, जिस पर अधिकरण अब नए सिरे से विचार करेगा, प्रतिकर की मात्रा पर कार्य करना होगा । इस

प्रकार, अधिकरण को संदेय प्रतिकर की मात्रा के बारे में एक विवाद्यक विरचित करना चाहिए, जिसके संबंध में, पक्षकारों को भी साक्ष्य प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए । मामले पर विचार करने के पूर्व, यह स्पष्ट किया जाता है कि विवाद्यक संख्या 1 पर निर्णय करते समय अधिकरण के दृष्टिकोण के बारे में मार्गदर्शन के अतिरिक्त, इस निर्णय को अपीलार्थियों के दावे के गुण-दोष पर या उसके विरुद्ध राय की अभिव्यक्ति के रूप में नहीं माना जाएगा । अधिकरण, इसमें ऊपर की उपदर्शित बातों को ध्यान में रखते हुए, विधि के अनुसार मामले का नए सिरे से विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र होगा । यह भी स्पष्ट किया जाता है कि अभिलेख पर पहले से विद्यमान साक्ष्यों पर विचार किया जाएगा, इसके साथ ही किसी भी अन्य साक्ष्य पर भी विचार किया जाएगा जिसे पक्षकारों को अब पेश करने की सलाह दी गई है । (पैरा 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26 और 27)

सिविल (अपीली) अधिकारिता : 2013 की प्रथम अपील आदेश सं. 44.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री आर. पी. शुक्ला और ए. के. शुक्ला

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री कुंवर बहादुर सिंह और वाकर हुसैन

न्यायमूर्ति जे. जे. मुनिर – यह अपील दावेदारों ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन फाइल की है ।

2. तारीख 18 अक्तूबर, 2012 के आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय द्वारा मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश न्यायालय संख्या 2, फैजाबाद ने अपीलार्थियों की दावा याचिका संख्या 28 वर्ष 2012 को खारिज कर दिया था ।

3. मोटर दुर्घटना दावा, तारीख 24 नवंबर, 2011 को शाम 5:30 बजे हुई एक दुर्घटना से उद्भूत हुई है । पीड़ित का नाम सुरेन्द्र कुमार वर्मा था । वर्मा अपना काम करने के बाद फैजाबाद से अपने ससुराल जा

रहा था । वह अपने ससुराल जिला फैजाबाद, पुलिस थाना कैंट के गांव पुरे काशीनाथ, हरीपुर जलालाबाद जा रहा था, जहां उसके ससुराल वाले रहते थे । वर्मा को एक टाटा बस ने टक्कर मारी जिसका पंजीकरण संख्या यू पी 42बी 1968 है, जिसके बारे में बताया गया कि उसका चालक उसे उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक से चला रहा था । वर्मा, जो सड़क के किनारे खड़ा था, बस ने टक्कर मार दी और उसके पहियों के नीचे कुचल गया । उसको गंभीर चोटें आईं । राहगीरों ने उसको जिला अस्पताल, फैजाबाद पहुंचाया, परन्तु अस्पताल ले जाते समय उसकी मृत्यु हो गई ।

4. दावेदार-अपीलार्थी-फूला देवी वर्मा की विधवा है । दावे में यह प्रकथन किया गया है कि दुर्घटना के समय वर्मा की आयु 30 वर्ष थी और वह एक स्वस्थ नौजवान था । वह राज मिस्त्री के रूप में लाभकारी स्वरोजगार करता था और खेती भी करता था । उसकी आय प्रतिमास 9,000/- रुपए थी । दावा याचिका अकेले वर्मा की विधवा द्वारा फाइल की गई थी, यद्यपि, प्रतिवादियों के कालम में मृतक की विधवा के अतिरिक्त उसके पिता शिव प्रसाद वर्मा, उसकी माता बिटन देवी, विकास वर्मा, विशाल वर्मा और अभिषेक वर्मा, उसके भाई भी दर्शाए गए हैं । दावा ब्याज सहित 47,80,000/- रुपए की राशि के लिए किया गया था ।

5. देव नारायण सिंह की ओर से एक लिखित कथन फाइल किया गया, जो कि उल्लंघन करने वाले यान का स्वामी है । उसने यान के पंजीकृत स्वामी होने के तथ्य को स्वीकार किया है और यह भी तथ्य स्वीकार किया है कि दावा याचिका में विरोधी पक्षकार संख्या 2, अवधेश कुमार सिंह, जो कि इसमें तीसरा प्रत्यर्थी है, वह चालक है । यह दावा किया गया कि अवधेश कुमार सिंह के पास बस चलाने के लिए विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी और उसे इस कार्य का अनुभव था । यह दलील दी गई कि घटना के बारे में कोई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी । यह प्रकथन किया गया है कि उल्लंघन करने वाला यान ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमटेड, फैजाबाद में पंजीकृत है, जिसकी पॉलिसी तारीख 5 जनवरी, 2012 की मध्य रात्रि तक विधिमान्य है ।

आगे यह भी आधार लिया है कि उल्लंघन करने वाला यान दुर्घटना में शामिल नहीं था । यह प्रकथन किया गया कि यदि अधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि उल्लंघन करने वाला यान ही वास्तव में दुर्घटना में शामिल था, तो क्षतिपूर्ति का दायित्व बीमा कंपनी पर डाला जाएगा ।

6. दावा याचिका में दूसरा विरोधी पक्षकार, जो इसमें द्वितीय प्रत्यर्थी है, अर्थात् ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, फैजाबाद ने अपने कथन में क्षेत्रीय प्रबंधक द्वारा प्रस्तुत फाइल किया गया था । अपीलार्थी के दावे को अस्वीकार कर दिया । यह प्रकथन किया था कि इंश्योरेंस बीमा कंपनी दुर्घटना के तथ्य और उसके द्वारा बीमाकृत उल्लंघनकारी यान दुर्घटना मे शामिल होने पर विवाद है । यह दलील दी गई कि जब तक दावेदार दुर्घटना के तथ्य को सिद्ध नहीं करता तब तक बीमा कंपनी पर साबित करने का भार नहीं था । यह भी दलील दी गई कि बीमा कंपनी ने दुर्घटना के तथ्य के साथ-साथ उसकी विधिमान्यता का बीमा करने से इनकार कर दिया, जब तक कि यान का पंजीकृत स्वामी उन तथ्यों को साबित नहीं करता । पंजीकृत स्वामी द्वारा यान के बीमा और उसकी विधिमान्यता को सिद्ध करने के बाद बीमा कंपनी पर उक्त तथ्य के बारे में दायित्व होगा । यह प्रकथन किया कि पंजीकृत स्वामी को यह साबित करना होगा कि चालक के पास विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी और यदि चालक दुर्घटना की तारीख पर विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी, को साबित करने में असफल रहता है, तो बीमा कंपनी का कोई दायित्व नहीं होगा । यह दलील भी दी गई कि यान के स्वामी को यान चलाने के लिए उसे अधिकृत करने वाले अन्य दस्तावेजों की विधिमान्य सिद्ध करनी होगी । दावा किए गए प्रतिकर को अत्यधिक बताया गया । यह भी दलील दी है कि दावा याचिका विहित प्ररूप में नहीं है और यह खारिज किए जाने योग्य है ।

7. अधिकरण ने पक्षकारों की अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

(i) क्या तारीख 24 नवंबर, 2011 को सायं लगभग 5:30 बजे

जब सुरेन्द्र कुमार वर्मा अपना दैनिक कार्य करने के पश्चात् फैजाबाद से अपने ससुराल गांव पूरे काशीनाथ, हरीपुर जलालाबाद, थाना कैंट जिला फैजाबाद जा रहा था, फैजाबाद की तरफ से आ रही टाटा बस संख्या यू पी 42बी 1968 जिसे उसके चालक ने उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाते हुए सुरेन्द्र कुमार वर्मा को टक्कर मार दी, जिसके कारण वह गंभीर रूप से घायल हो गया, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई ?

(ii) क्या दुर्घटना के समय यान पंजीकरण संख्या यू पी 42बी 1968 का बीमा, ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी के कार्यालय में कराया था ?

(iii) क्या दुर्घटना के समय पंजीकरण संख्या यू पी 42बी 1968 वाले यान को विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति वाले चालक द्वारा चलाया जा रहा था ?

(iv) दावेदार किस अनुतोष के हकदार हैं ?

8. दावे के समर्थन में, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की छाया प्रति, भारत के चुनाव आयोग द्वारा जारी फोटो पहचान पत्र की छाया प्रति, पुलिस द्वारा फाइल किए गए आरोप पत्र की प्रमाणित प्रति, शव-परीक्षा की प्रमाणित प्रति, संबंधित आपराधिक मामले में अन्वेषक अधिकारी द्वारा तैयार नक्शा नज़री की प्रमाणित प्रति के अलावा मृतक के मृत्यु प्रमाण-पत्र की छायाप्रति और मूल श्रम दर सूची फाइल की गई है । फूला देवी, दावेदार कटघरे में आई और उसने प्रतिवादी साक्षी 1 के रूप में दावा याचिका के समर्थन में अभिसाक्ष्य दिया । केशव राम नामक एक व्यक्ति की भी प्रतिवादी साक्षी 2 के रूप में दावा याचिका के समर्थन में परीक्षा की गई । स्वामी और चालक की ओर से चालन अनुज्ञप्ति की छायाप्रति, दुर्घटना में शामिल यान के पंजीकरण की छायाप्रति और बीमा कवर नोट की छायाप्रति फाइल की गई है । स्वामी और चालक की ओर से किसी ने मौखिक साक्ष्य नहीं दिया ।

9. बीमा कंपनी ने कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया, चाहे वह दस्तावेजी हो या मौखिक ।

10. महत्वपूर्ण विवाद्यक, जिस पर दावा याचिका केन्द्रित है, विवाद्यक संख्या (1) है । यह दुर्घटना के तथ्य के बारे में है जिसमें दुर्घटना में शामिल यान भी है । इस विवाद्यक का उत्तर दावेदारों के विरुद्ध और प्रतिवादियों/विरोधी पक्षकारों के पक्ष में दिया गया है । यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि विवाद्यक संख्या 2 और 3 का उत्तर सकारात्मक रूप से दिया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दुर्घटना में शामिल यान का बीमा ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी से कराया गया था और दुर्घटना तारीख को चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी । फिर भी, विवाद्यक संख्या 1 पर निकाले गए निष्कर्षों के आधार पर दावा याचिका को खारिज किए जाने का आदेश दिया गया है ।

11. आदेश से व्यथित होकर, वर्तमान प्रथम अपील दावेदारों द्वारा फाइल की गई है जिसमें किसी कारणवश, दावा याचिका में दर्शाए गए मृतक के सभी आश्रित शामिल हैं ।

12. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री आर. पी. शुक्ला और ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री वकार हासिम को सुना गया । प्रत्यर्थी संख्या 1 और 3 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ ।

13. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री शुक्ला ने दलील दी है कि विवाद्यक संख्या 1 पर निष्कर्ष अनुमानों पर आधारित है और औपचारिक हैं । उन्होंने दलील दी है कि अधिकरण ने प्रतिवादी साक्षी 2 केशव राम वर्मा, जो घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है, के साक्ष्य को दुर्घटना स्थल पर उसकी विद्यमानता पर संदेह के आधार पर खारिज कर दिया । उन्होंने दलील दी है कि अधिकरण ने दुर्घटना के समय और उसके तुरन्त बाद साक्षी के आचरण का आंकलन करके इन निष्कर्षों को निकाला है, जिसे श्री शुक्ला के अनुसार, साक्षी के कार्य के बारे में एक काल्पनिक नमूने के रूप में प्रस्तुत किया गया है, यदि वह वास्तव में दुर्घटना स्थल पर विद्यमान होता तो उसे किस तरह से काम करना चाहिए था और तत्पश्चात्, अधिकरण ने साक्षी के आचरण की तुलना उस नमूने से की है ताकि उसी विद्यमानता पर विश्वास न किया जा सके ।

14. दूसरी ओर, बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी है कि अधिकरण ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया है और दुर्घटना के तथ्य पर विश्वास नहीं किया है । अधिकरण ने अभि. सा. 2 केशव राम वर्मा के आचरण पर विचार किया है, जो दुर्घटना का प्रत्यक्षदर्शी होने का दावा करता है और सही निष्कर्ष निकाला है कि वह एक मिथ्या साक्षी था ।

15. बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल श्री वकार हासिम ने यह भी दलील दी है कि अधिकरण ने सही प्रकार से मत दिया है कि अभि. सा. 1 का साक्ष्य बिल्कुल भी प्रासंगिक नहीं है क्योंकि वह प्रत्यक्षदर्शी नहीं है । उसका साक्ष्य अनुश्रुति साक्ष्य है। बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल ने इस तथ्य पर भी बहुत जोर दिया है कि दुर्घटना शाम 5:30 बजे घटी थी और उस समय तक नवंबर के मास में काफी अंधेरा हो चुका होता है । अधिकरण ने सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया है कि मोटरसाइकिल की साक्षी उल्लंघनकारी यान से आगे चल रही थी जब दुर्घटता घटी थी और इसलिए यह विश्वास करने योग्य नहीं है कि साक्षी ने पीछे की तरफ यान की पंजीकरण संख्या देखी होगी । अभि. सा.2 के साक्ष्य की भी अधिकरण द्वारा उसी प्रकार निंदा की गई है, जिस आधार पर इस साक्षी ने कहा है कि वह वर्मा को व्यक्तिगत रूप से जानता था और फिर भी, उसे गंभीर दुर्घटना में पीड़ित होते देखने के बाद, वह पीड़ित को अस्पतात नहीं ले गया । इसके बजाय, वह दुर्घटना के बारे में उसके नातेदारों को सूचना देने के लिए वर्मा के घर चला गया । बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि अधिकरण ने शव-परीक्षा को सही प्रकार से पढ़ा और समझा है, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मृतक को पहुंची चोटें किसी भी तरह की हिंसा या घटना किसी प्रकार के परिणाम से हो सकती हैं । शव-परीक्षा में दर्शाई गई चोटों से यह उपदर्शित नहीं होता है कि पीड़ित की मृत्यु मोटर दुर्घटना के कारण हुई है ।

16. हमने दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई अग्रिम दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है तथा अभिलेख का भी परिशीलन किया है ।

17. इस न्यायालय को तुरंत यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि अभि. सा. 2 केशव राम की सत्ययता के बारे में अधिकरण द्वारा निकाले गए विभिन्न निष्कर्ष वास्तव में अनुमान पर आधारित हैं । अधिकरण ने अभि. सा. 2 की उपस्थिति को बनावटी के रूप में अभिलिखित किया है, क्योंकि वह दुर्घटना के तुरंत बाद वर्मा को अस्पतात नहीं ले गया था । इस उद्देश्य से अधिकरण ने तर्क दिया है कि साक्षी का कहना है कि वह वर्मा को जानता था और यदि ऐसा था, तो पीड़ित को अस्पताल न ले जाने के साक्षी के आचरण से दुर्घटना स्थल पर उसकी उपस्थिति पर विश्वास करना असंभव हो जाता है । हमें ऐसा नहीं लगता । मृतक एक दुर्घटना से पीड़ित हुआ था, जहां वह बस के पहिए के नीचे कुचला गया । किसी व्यक्ति द्वारा किसी निश्चित स्थिति में किस प्रकार से प्रतिक्रिया की जाएगी, इसका अंदाजा व्यवहार की रूढ़ियों से नहीं लगाया जा सकता । व्यक्तित्व, प्रशिक्षण, पीड़ित को लगी चोट की प्रकृति और अन्य परिस्थितियों, जैसे कि पीड़ित को चिकित्सा सहायता के लिए ले जाने में दूसरों की तत्पर मदद के आधार पर प्रतिक्रियाओं में बहुत भिन्नता हो सकती है । डरपोक दिलवाला या आत्मविश्वास की कमी वाला या अपने प्रशिक्षण के अनुसार किसी खूनी घटना के पीड़ितों को संभालने का आदी न होने वाला व्यक्ति, किसी परिचित या मित्र को बुरी तरह या जानलेवा रूप से घायल अवस्था में अस्पतात ले जाने की हिम्मत नहीं कर सकता । ऐसा करने या न करने का निर्णय दूसरों की उपस्थिति से भी निर्धारित हो सकता है, जो पीड़ित को अस्पताल ले जाने के लिए स्वेच्छा से आगे आ सकते हैं । यहां, इस बात के सबूत हैं कि पीड़ित को वास्तव में राहगीरों द्वारा अस्पताल ले जाया गया था । इन परिस्थितियों में, यदि साक्षी ने वर्मा के नातेदारों को इस घटना के बारे में सूचित करना बेहतर समझा, तो यह तथ्य कि उसने पहली बार में वर्मा को अस्पताल नहीं पहुंचाया, अभि. सा. 2 की उपस्थिति को संदिग्ध नहीं बना सकता । इस बात का कोई सबूत नहीं है कि अभि. सा. 2 किसी तरह की नौकरी करता है, जैसे कि सहचिकित्सा या सशस्त्र बलों का सदस्य, जहां उसे गंभीर चोटों या दुर्घटनाओं से

पीड़ितों, विशेष रूप से अपने नातेदारों को संभालने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है । स्पष्ट है कि वह ऐसा व्यक्ति है जिसके पास कोई विशेष प्रशिक्षण या जीवन में कोई विशेष स्थान नहीं है, जो उसे किसी बड़ी दुर्घटना के पीड़ित को अस्पताल ले जाने के लिए तैयार कर सके । साक्षी द्वारा पीड़ित को अस्पताल न ले जाने के और भी कई कारण हो सकते है, परन्तु इस मामले में हम जो कार्यवाही अपनाने का प्रस्ताव कर रहे हैं, उसे देखते हुए यह न्यायालय इस मामले में आगे कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं करना चाहता ।

18. अधिकरण के अन्य निष्कर्ष कि यदि इस साक्षी ने वास्तव में, दुर्घटना में शामिल यान का नंबर पढ़ा या नोट किया होता, तो वह वर्मा के कुटुंब के सदस्यों को इसकी जानकारी देता और उस स्थिति में, अगले दिन कुटुंब द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में इसका उल्लेख होता, समान रूप से त्रुटिपूर्ण है । यह भी एक धारणा है जो पुरुषों की प्रतिक्रियाओं पर आधारित नहीं है, जो एक आघात के बीच में थे । यह मानना अनुचित नहीं है कि एक व्यक्ति, जिसने एक घातक दुर्घटना देखी है, कुटुंब को इसके बारे में सूचित करता है, परन्तु दुर्घटना में शामिल यान की पंजीकरण संख्या का उल्लेख करना भूल जाता है । कुटुंब, जिसने अगले दिन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई, वह प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को उसके सभी सूक्ष्म विवरणों में लिखने के लिए मानसिक रूप से पूरी तरह से शांत नहीं होगा । यह मान लेना थोड़ा अनुचित और पांडित्यपूर्ण है कि अगले दिन दर्ज की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में दुर्घटना में शामिल यान की पंजीकरण संख्या न होना यह दर्शाता है कि साक्षी अभि. सा. 2 ने कभी उस नंबर को नोट नहीं किया था । इस प्रकार की दुर्घटना के बाद होने वाली अफरातफरी में, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या बाद में दिए गए कथन में पंजीकरण संख्या छूट जाने के कई कारण हो सकते हैं ।

19. इस मामले पर अधिक सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है । अधिकरण द्वारा अभिलिखित किया गया यह निष्कर्ष कि अभि. सा. 2 केशव राम मोटरसाइकिल चला रहा था और उसकी

उपस्थिति विश्वसनीय नहीं है क्योंकि उसने दुर्घटना मे शामिल यान, बस का पीछा नहीं किया और उसे रुकने के लिए मजबूर नहीं किया । अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करने का बहुत ही बेतुका अनुमान लगाया है कि यह सुनिश्चित है कि मोटरसाइकिल की गति बस की गति से अधिक थी और इसलिए, साक्षी द्वारा बस का पीछा न करना और उसे न पकड़ना उसकी उपस्थिति को संदिग्ध बनाता है । यह हमेशा आवश्यक नहीं है कि मोटरसाइकिल बस से अधिक तेज चले । यह सड़क की स्थिति और कई अन्य कारकों पर निर्भर करता है । यह मोटरसाइकिल के साथ-साथ बस की स्थिति और तकनीकी विशिष्टताओं पर भी निर्भर करता है । अधिकरण द्वारा भी इसके बारे में कोई सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है । बस जैसे बड़े यान का दोपहिया यान पर पीछा करना और उसे रोकना कोई मामूली काम नहीं है और एक अप्रशिक्षित व्यक्ति में ऐसा करने का साहस या आवश्यक कौशल कभी नहीं हो सकता है । उसे अपनी जान का भी डर हो सकता है कि एक बार जानलेवा बस, जवाबदेही से बचने के लिए, दुगुनी जानलेवा बन सकती है । ये सभी संभावनाएं हैं जो साक्षी को उस रास्ते को चुनने से विधिसम्मत रूप से रोक सकती है जिसे अधिकरण ने इस साक्षी के परिसाक्ष्य के मिथ्या होने के बारे में निर्णायक माना है ।

20. पुनः, यह न्यायालय कोई अंतिम मत व्यक्त करने से अपने को विरत करता है, परन्तु यह इंगित करना चाहता है कि ये ऐसी संभावनाएं हैं जिनके लिए अधिक वस्तुनिष्ठ अवधारण करने की आवश्यकता है ।

21. पुलिस को मामले की सूचना देने में उसकी निष्क्रियता के लिए इस साक्षी की उपस्थिति के विरुद्ध निकाले गए प्रतिकूल निष्कर्ष को भी अनावश्यक महत्व दिया गया है । घटनाओं के क्रम में, एक बार जब साक्षी ने सोचा कि उसे कुटुंब के पास जाना चाहिए, तो पुलिस को सूचित करना एक गौण प्राथमिकता बन सकती थी । पीड़ित को पहले ही मौके पर विद्यमान व्यक्तियों द्वारा अस्पताल ले जाया जा चुका था, और पुलिस किसी भी तरह अस्पताल पहुंच चुकी थी । इसके बाद अधिकरण

द्वारा एक और निष्कर्ष अभिलिखित किया गया है, जिसमें कहा गया है कि अभि. सा. 2 ने इस तथ्य को स्वीकर किया है कि उसकी मोटरसाइकिल की हेडलाइट काम कर रही थी, परन्तु बस की नहीं । इसलिए, शाम को 5:30 बजे जब अंधेरा था, तब साक्षी द्वारा यान का पंजीकरण संख्या नोट करना अस्वाभाविक था । यह समझ से परे है कि बस की खराब हेडलाइट साक्षी को, जिसकी मोटरसाइकिल की हेडलाइट काम कर रही थी, उसका पंजीकरण नंबर नोट करने से कैसे रोक सकती थी । अधिकरण द्वारा अभिलिखित किया गया यह निष्कर्ष अनुचित है । यह संभव है कि साक्षी ने तारीख 24 नवंबर, 2011 की शाम 5:30 बजे, अंधेरा होने के बावजूद, 10-15 फीट की दूरी से अपनी मोटरसाइकिल की हेडलाइट का उपयोग करके बस की पंजीकरण संख्या नोट कर ली हो, जिससे बस की पीछे की नंबर प्लेट पर प्रकाश पड़ा होगा ।

22. अभिलिखित किए गए अन्य निष्कर्षों में ईंट भट्ठा, छात्रों का छात्रावास या महेन्द्र ट्रैक्टर एजेंसी द्वारा नियोजित सुरक्षाकर्मियों को दुर्घटना के तथ्य को साबित करने के लिए दावेदार द्वारा साक्षी के रूप में नहीं बुलाया गया ।

23. हमारी राय में, जब अभि. सा. 2 ने दुर्घटना के प्रत्यक्षदर्शी के रूप में साक्ष्य दिया था, तो बीमा कंपनी के लिए दावेदारों के मामले का खंडन करने के लिए सबूत प्रस्तुत करना अनिवार्य था । अभि. सा. 2 का साक्ष्य, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 101 के समान सिद्धांत पर दावेदारों के दायित्व का निर्वहन करने के लिए पर्याप्त है । यद्यपि, अधिनियम का अंतिम उल्लेख अधिकरण के समक्ष कार्यवाही पर स्वतः से लागू नहीं होता है, परन्तु यह सुस्थिर सिद्धांत है ।

24. साबित करने के लिए किसी विवाद्यक पर साक्ष्य प्रस्तुत करने का भार किसी विशेष समय पर एक पक्षकार या दूसरे के कंधों पर होता है । यह विचारण के दौरान बदलता रहता है और यह उस सबूत के भार से अलग है, जो किसी विवाद्यक पर निर्वहन किया जाने वाला समग्र भार होता है । यहां, जैसा कि पहले ही कहा गया है, बीमा कंपनी ने

कोई सबूत प्रस्तुत नहीं किया है । अधिकरण ने, बीमा कंपनी या उस मामले के लिए, चालक या स्वामी द्वारा प्रस्तुत किसी भी सबूत की अनुपस्थिति में, दावेदारों के मामले पर अविश्वास करके विधि की स्पष्ट त्रुटि की है । अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए विवाद्यक संख्या 1 पर निष्कर्ष प्रत्येक कोण से अत्यधिक अनुमानों पर आधारित है ।

25. जो भी हो, यह न्यायालय इस मामले में अंतिम राय व्यक्त नहीं करना चाहता है, क्योंकि हमारा मानना है कि यह मामला अधिकरण के पास वापस जाना चाहिए, जिसे इसका पुनः विचारण और अवधारण करना चाहिए, तथा दोनों पक्षकारों को ऐसे साक्ष्य के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए, जैसा उन्हें सलाह दी जाए ।

26. इस न्यायालय ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया है कि विवाद्यक संख्या 2 और 3 पर निष्कर्ष, सरसरी तौर पर अभिलिखित किए गए हैं, क्योंकि अधिकरण का दृष्टिकोण विवाद्यक संख्या 1 पर उसके निष्कर्षों के प्रतिबिंब में था । बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल की दलील है कि उन निष्कर्षों पर भी नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है, ताकि उन्हें अपने लिखित कथन में उठाए गए अभिवाकों के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर मिल सके । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलीलें दी हैं कि अधिकरण ने दावा किए गए प्रतिकर की मात्रा के बारे में कोई विवाद्यक विरचित नहीं किया है, जिसे विरचित किया जाना चाहिए था । यह सत्य है कि यदि दावा सफल होता है, तो अन्य निष्कर्षों पर अधिमत के परिणामस्वरूप, जिस पर अधिकरण अब नए सिरे से विचार करेगा, प्रतिकर की मात्रा पर कार्य करना होगा । इस प्रकार, अधिकरण को संदेय प्रतिकर की मात्रा के बारे में एक विवाद्यक विरचित करना चाहिए, जिसके संबंध में, पक्षकारों को भी साक्ष्य प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए ।

27. मामले पर विचार करने के पूर्व, यह स्पष्ट किया जाता है कि विवाद्यक संख्या 1 पर निर्णय करते समय अधिकरण के दृष्टिकोण के बारे में मार्गदर्शन के अतिरिक्त, इस निर्णय को अपीलार्थियों के दावे के

गुण-दोष पर या उसके विरुद्ध राय की अभिव्यक्ति के रूप में नहीं माना जाएगा । अधिकरण, इसमें ऊपर की उपदर्शित बातों को ध्यान में रखते हुए, विधि के अनुसार मामले का नए सिरे से विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र होगा । यह भी स्पष्ट किया जाता है कि अभिलेख पर पहले से विद्यमान साक्ष्यों पर विचार किया जाएगा, इसके साथ ही किसी भी अन्य साक्ष्य पर भी विचार किया जाएगा जिसे पक्षकारों को अब पेश करने की सलाह दी गई है ।

28. इन परिस्थितियों में, यह अपील आंशिक रूप से सफल होती है और आंशिक रूप से मंजूर की जाती है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/ अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 2, फैजाबाद द्वारा वर्ष 2012 की दावा याचिका संख्या 28, फूला देवी बनाम देव नारायण एवं अन्य द्वारा पारित की गई तारीख 18 अक्तूबर, 2012 का आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय को इस प्रकार अपास्त किया जाता है कि मामले को अधिकरण को विप्रेषित किया जाए ताकि वह इस निर्णय में दिए गए मार्गदर्शन के अनुसार दावा याचिका पर नए सिरे से विचार करके निर्णय ले सके । यह भी आदेश दिया जाता है कि अधिकरण इस निर्णय की प्रति प्राप्त होने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर दावा याचिका पर निर्णय लेने का प्रयत्न करेगा ।

29. खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील आंशिक रूप से मंजूर की गई ।

मही./क.

प्रबन्धक, भारतीय जीवन बीमा निगम, बस्ती*

बनाम

स्थायी लोक अदालत, बस्ती और अन्य

(2014 की 'सी' सं. 2582)

तारीख 3 दिसंबर, 2021

न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित विधि सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अध्याय 6क की धारा 22ग और उपधारा (1) से उपधारा (7) तक] – रिट याचिका – याची द्वारा प्रश्नगत बीमा कम्पनी के साथ अपनी पत्नी का स्वास्थ्य बीमा कराना – पत्नी की बीमारी के कारण अपोलो अस्पताल, दिल्ली में भर्ती कराया जाना – पत्नी पर इलाज के दौरान हुए खर्चे का बीमा कम्पनी से दावा करना – बीमा कम्पनी द्वारा याची द्वारा मांग की गई राशि देने से इनकार करना – लोक अदालत में मामला फाइल किया जाना – लोक अदालत द्वारा पक्षकारों के बीच सौहार्दपूर्ण समझौता कराने के बजाय स्वयं निर्णय देना – निर्णय आक्षेपित करना – यदि स्वास्थ्य बीमा के अधीन प्रतिकर का दावा करते हुए पक्षकार लोक अदालत के पास जाते हैं तो लोक अदालत का यह कानूनी दायित्व है कि वह पक्षकारों के बीच बीमा प्रतिकर राशि से संबंधित विवाद में, नियमानुसार सौहार्दपूर्ण समझौता कराए, यदि वह अपने इस कानूनी दायित्व का निर्वहन नहीं करते हुए स्वयं कोई निर्णय देता है तो वह निर्णय विधिविरुद्ध और दूषित होगा और ऐसा निर्णय असांविधानिक होने के कारण रद्द किए जाने योग्य होगा ।

मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी सं. 2 ने 'हेल्थ प्लस योजना' के अंतर्गत स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु, याची ने (भारतीय जीवन

---

* मूल निर्णय हिन्दी में है ।

बीमा निगम) से तारीख 25 मार्च, 2018 (बीमा पॉलिसी सं. 294568688) को कराया था । जिसके अंतर्गत, प्रत्यर्थी सं. 2, उसकी पत्नी प्रमिला त्रिपाठी और एक बच्चे का स्वास्थ्य संबंधित बीमा हुआ था । प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपनी पत्नी को अपोलो अस्पताल, दिल्ली में उपचार हेतु भर्ती कराया, जिसका तारीख 6 सितंबर, 2011 को शल्योपचार हुआ तथा उसकी तारीख 11 सितंबर, 2011 को अस्पताल से छुट्टी हुई । प्रत्यर्थी सं. 2, ने याची से अपनी पत्नी की अस्पताल में हुए खर्चों 3,64,678.04 (तीन लाख चौसठ हजार छः सौ अठहत्तर रुपए चार पैसे मात्र) का दावा किया, परन्तु बीमा निगम ने वो दावा, तारीख 9 मार्च, 2012 के पत्र द्वारा अस्वीकार कर दिया, कि वह दावा बीमा नीति (पॉलिसी) के अंतर्गत नहीं था, क्योंकि पॉलिसी के शुरु होने के बहुत वर्ष पहले से ही प्रत्यर्थी सं. 2 की पत्नी उक्त बीमारी (मोटापे) से पूर्व ग्रसित थी । प्रत्यर्थी सं. 2, ने स्थायी लोक अदालत, के समक्ष एक आवेदन तारीख 14 जून, 2013 को फाइल किया तथा उपरोक्त तथ्यों का वर्णन करते हुए 3,64,678.04 रुपए तथा ब्याज की मांग की और कथन किया कि उसका दावा असंगत आधारों पर निरस्त किया गया था तथा पॉलिसी की शर्तों का घोर उल्लंघन भी किया गया था । उपरोक्त आवेदन का विरोध करते हुए, याची द्वारा लिखित उत्तर तारीख 27 जुलाई, 2013 को दिया गया कि प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपनी पत्नी के 12 वर्षों से वजन बढ़ने की बात व उसके लिए दवा लेने व उपचार कराने की बात पॉलिसी लेते समय छिपायी, अतः बीमा धारक की बीमारी (वजन बढ़ने की) पॉलिसी लेने के पूर्व की होने के कारण, दावा देय नहीं हो सकता था । तारीख 29 अगस्त, 2011 को उनका वजन 115 किलो ग्राम था, जैसा डाक्टर कृपलानी से अपने पर्चे पर लिखा था, परन्तु बीमा लेते हुए उसका वजन मात्र 58 कि.ग्रा. दिखाया गया, जो पूर्णतः गलत था । स्थायी लोक अदालत के समक्ष आवेदन/याचिका फाइल करने पर उसने आक्षेपित आदेश द्वारा आवेदन/याचिका खारिज कर दी । इससे व्यथित होकर वर्तमान याचिका फाइल की । याचिका भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में उद्भूत विधिक प्रश्न, जिसका उल्लेख इस निर्णय के प्रस्तर 1 में किया गया है, उस पर दोनों पक्षों की चर्चा के

मद्देनजर, निर्णय लेने के लिए, सर्वप्रथम विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1983 के अधिनियमित करने के उद्देश्य का उल्लेख करना अतिआवश्यक है, जो निम्नलिखित है – "समाज के दुर्बल वर्गों को निःशुल्क और सक्षम विधिक सेवा यह सुनिश्चित करने हेतु उपलब्ध कराने के लिए कि आर्थिक या अन्य निर्योग्यताओं के कारण कोई भी नागरिक न्याय पाने के अवसर से वंचित न रह जाए, विधिक सेवा प्राधिकरणों का गठन करने के लिए और यह सुनिश्चित करने हेतु कि विधिक पद्धति के प्रवर्तन से समान अवसर के आधार पर न्याय का संवर्धन हो, लोक अदालतें संगठित करने के लिए अधिनियम" । उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति के हेतु 'लोक अदालतों के आयोजन' का प्रावधान उक्त अधिनियम के अध्याय 6 में किया गया है । अध्याय 6क, के धारा 22 (ख) की उपधारा (1) में 'स्थायी लोक अदालत' की स्थापना का प्रावधान है । 'लोक अदालत' व 'स्थायी लोक अदालत' में एक महत्वपूर्ण बुनियादी अंतर है । जहां लोक अदालत पक्षकारों के बीच समझौता या परिनिर्धारण करने का प्रयास करेगा और यदि ऐसा न हो पाएगा तो वाद विधि के अनुसार निपटाने के लिए लौटा दिया जाएगा । परन्तु उक्त अधिनियम की धारा 22ग के अनुसार 'स्थायी लोक अदालत' मामलों का संज्ञान लेने के उपरान्त सर्वप्रथम पक्षकारों के बीच सुलह कार्यवाही करेगी और स्वतंत्र और निष्पक्ष रीति से सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचने के लिए, पक्षकारों के प्रयास में सहायता करेगी । परन्तु यदि पक्षकार किसी करार पर पहुंचने में असफल रहते हैं और यदि विवाद किसी अपराध से संबंधित नहीं है, उस दशा में ही स्थायी लोक अदालत विवाद का विनिश्चय कर सकती है । पक्षकारों के लिखित कथन व विवाद के मुद्दों के विवाद्यकों को ध्यान में रखते हुए, पक्षकारों की बीच स्थायी लोक अदालत, सुलह कार्यवाहियां द्वारा पक्षकारों को विवाद के स्वतंत्र और निष्पक्ष रीति में सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचने के लिए उनके प्रयास में सहायता करेगी । अतः यह आवश्यक है कि स्थायी लोक अदालत, उक्त प्रयासों का संक्षेप में अपने आदेश में उल्लेख करे क्योंकि उपधारा (8) के अनुसार यदि पक्षकार किसी करार पर पहुंचने से असफल रहते हैं, उस दशा में ही, स्थायी लोक अदालत विवाद का विनिश्चय कर सकती हैं । उपधारा (8) तक की स्थिति तक पहुंचने से पहले उपधारा (3), (4), (5) व (6) में किए गए प्रयास व

उपधारा (7) में समझौते पर न पहुंचने की स्थिति के उपरान्त ही, स्थायी लोक अदालत, उपधारा (8) के अन्तर्गत गुण-दोष पर निर्णय ले सकती है । अतः उक्त कार्यवाही का उल्लेख, संक्षिप्त में ही सही, परन्तु अवश्य होना चाहिए । उपरोक्त विश्लेषण से यह पूर्णतः विदित होता है कि, स्थायी लोक अदालत, को सर्वप्रथम पक्षकारों को सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचाने के लिए अपनी बुद्धिमत्ता, ज्ञान व अनुभव का उपयोग करके प्रयास करना चाहिए । जो उसका सर्वप्रथम कर्तव्य है । इस प्रयास में असफल होने के उपरान्त ही विवाद का विनिश्चय करना चाहिए । परन्तु उपरोक्त कार्यवाहियों का उल्लेख (संक्षेप में) पंचाट में अवश्य होना चाहिए, जिसमें उसके द्वारा विवाद का विनिश्चय करने का कारण पता चल सके । ऐसा उल्लेखित न होने से यह प्रतीत होगा कि स्थायी लोक अदालत, द्वारा पक्षकारों के बीच समझौता कराने का कोई प्रयास नहीं किया गया, जो उक्त अधिनियम के प्रावधानों का हनन करने के समकक्ष होगा । अतः ऐसी दशा में 'पंचाट' विधिक रूप से मान्य नहीं माना जाएगा । मामले में उत्पन्न विधिक प्रश्न का निर्धारण उपरोक्त वर्णन द्वारा किया जाता है । वर्तमान मामले में पंचाट में समझौते के प्रयास के संबंध में कोई उल्लेख नहीं किया गया है, केवल एक स्थान पर समझौते के लिए तारीख निर्धारित की गई, ऐसा उल्लेखित है, परन्तु उक्त तारीख पर क्या प्रयास किए गए व क्यों पक्षकार समझौता नहीं कर पाए, ऐसा कुछ भी नहीं लिखा गया है । अतः यह प्रतीत होता है 'स्थायी लोक अदालत' ने सौहार्दपूर्ण समझौते के लिए कोई भी प्रयास नहीं किया होगा या युक्तियुक्त प्रयास की कमी रही होगी तथा वह सीधे विवाद में विनिश्चय की स्थिति पर पहुंच गए जो, उपरोक्त विश्लेषण के पूर्णतः विपरीत है । अतः आक्षेपित पंचाट इसी कारणवश, विधिविरुद्ध व दूषित हो जाता है । क्योंकि यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि स्थायी लोक अदालत द्वारा समझौते की प्रक्रिया का प्रयास किए बिना विवाद पर गुण-दोष पर निर्णय देना अवैधानिक है, अतः इस स्तर पर पंचाट की गुण-दोष पर जांच करने की आवश्यकता नहीं है । [पैरा 6, (छ), (ज) और (झ)]

सिविल (रिट) अधिकारिता : 2014 की 'सी' सं. 2582.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री मनीष गोयल, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की से सर्वश्री उमा नाथ पाण्डेय और एस. आर. दूबे, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी –

1. **विचारार्थ विधिक प्रश्न**

वर्तमान मामले के तथ्य व परिस्थितियों के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न, इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए उद्भूत होता है कि :–

"विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अध्याय 6क (वाद पूर्व सुलह और समझौता) की धारा 22ग व उपधारा (1) से (7) के अंतर्गत 'स्थायी लोक अदालत' द्वारा 'पूर्वोक्त सुलह कार्यवाहियों' की सहायता से 'सौहार्दपूर्ण समझौते' पर पहुंचने के लिए युक्तियुक्त प्रयास करना क्या आवश्यक है तथा उक्त प्रयास असफल होने की स्थिति में 'विवाद का विनिश्चय' उपधारा (8) करने के पूर्व उक्त कार्यवाही का संक्षेप में उल्लेख करना भी क्या आवश्यक है, तथा ऐसा न होने के कारण मात्र से क्या अधिनिर्णीत 'पंचाट' अवैधानिक हो जाएगा" ?

2. **मामले का तथ्यात्मक प्रारूप**

(क) प्रत्यर्थी सं. 2 ने 'हेल्थ प्लस योजना' के अंतर्गत स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु, याची ने (भारतीय जीवन बीमा निगम) से तारीख 25 मार्च, 2018 (बीमा पॉलिसी सं. 294568688) को कराया था । जिसके अंतर्गत, प्रत्यर्थी सं. 2, उसकी पत्नी प्रमिला त्रिपाठी और एक बच्चे का स्वास्थ्य संबंधित बीमा हुआ था ।

(ख) प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपनी पत्नी को अपोलो अस्पताल, दिल्ली में उपचार हेतु भर्ती कराया, जिसका तारीख 6 सितंबर, 2011 को शल्योपचार हुआ तथा उसकी तारीख 11 सितंबर, 2011 को अस्पताल से छुट्टी हुई । प्रत्यर्थी सं. 2, ने याची से अपनी पत्नी की अस्पताल में हुए खर्चों 3,64,000/- (तीन लाख चौसठ हजार अठहत्तर रुपए) का दावा किया, परन्तु बीमा निगम ने वो दावा,

तारीख 9 मार्च, 2012 के पत्रक द्वारा अस्वीकार कर दिया, कि वह दावा बीमा नीति (पॉलिसी) के अंतर्गत नहीं था, क्योंकि पॉलिसी के शुरु होने के बहुत वर्ष पहले से ही प्रत्यर्थी सं. 2 की पत्नी उक्त बीमारी (मोटापे) से पूर्व ग्रसित थी ।

(ग) प्रत्यर्थी सं. 2, ने स्थायी लोक अदालत, के समक्ष एक आवेदन तारीख 14 जून, 2013 को फाइल किया तथा उपरोक्त तथ्यों का वर्णन करते हुए 3,64,678/- रुपए तथा ब्याज की मांग की और कथन किया कि उसका दावा असंगत आधारों पर निरस्त किया गया था तथा पॉलिसी की शर्तों का घोर उल्लंघन भी किया गया था ।

(घ) उपरोक्त आवेदन का विरोध करते हुए, याची द्वारा लिखित उत्तर तारीख 27 जुलाई, 2013 को दिया गया कि प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपनी पत्नी के 12 वर्षों से वजन बढ़ने की बात व उसके लिए दवा लेने व उपचार कराने की बात पॉलिसी लेते समय छिपायी, अतः बीमा धारक की बीमारी (वजन बढ़ने की) पॉलिसी लेने के पूर्व की होने के कारण, दावा देय नहीं हो सकता था । तारीख 29 अगस्त, 2011 को उनका वजन 115 किलो ग्राम था, जैसा डाक्टर कृपलानी से अपने पर्चे पर लिखा था, परन्तु बीमा लेते हुए उसका वजन मात्र 58 कि.ग्रा. दिखाया गया, जो पूर्णतः गलत था ।

(ङ) स्थायी लोक अदालत ने आक्षेपित अधिनिर्णय तारीख 22 अक्तूबर, 2013 द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 की याचिका स्वीकार की व निम्न आदेश पारित किया –

> "याचिका स्वीकार की जाती है । याची के पक्ष में और प्रत्यर्थी के विरुद्ध 3,64,678.04/- रुपए (तीन लाख चौसठ हजार छः सौ अठहत्तर रुपए चार पैसे मात्र) तथा उस पर याचिका फाइल करने की तारीख से 10 प्रतिशत प्रतिवार्षिक की दर से ब्याज की भी वसूली आज्ञप्त की जाती है इसके अतिरिक्त, वाद व्यय और काउंसेल फीस के मद में रुपए 5,000/- (पांच हजार रुपए मात्र) भी याची, प्रत्यर्थी से पाने

का हकदार है । आज्ञप्त धनराशि इस आदेश के दो मास के भीतर भुगतान न होने पर पूरी आज्ञप्त धनराशि पर वसूली की तारीख तक याची को उक्त दर से ब्याज भी संदेय करना होगा ।"

(च) स्थायी लोक अदालत ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि – "बीमित व्यक्ति सुश्री प्रमिला त्रिपाठी की अपोलो अस्पताल में जो जांच और उपचार हुआ उससे सम्बन्धित डिस्चार्ज समरी (Discharge Summary) 19ग/18 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि निदान (Diagnosis) में वजन आदि का साक्ष्य, प्रारम्भिक लक्षण Morbid Obesity अवश्य अंकित है किन्तु एंडोस्कोपी (Endoscopy) के पश्चात् यह स्पष्ट हुआ था कि सुश्री प्रमिला त्रिपाठी का जिस बीमारी हेतु आपरेशन किया गया था वह या आंथ्रल गैस्ट्रीटिस (Antral gastritis) तथा इरोसिव डिओडेनिटिस (erosive duodenitis) यानी गैस सम्बन्धी बीमारी और छोटी आंत में क्षरण और इसी कारण आपरेशन हुआ था और यह बीमारी बीमा लेने के समय अस्तित्व में होने की साक्ष्य तो है ही नहीं, कथन तक नहीं है ।

इस प्रकार, प्रत्यर्थी बीमा कम्पनी के बचाव प्रकरण का एक मात्र आधार कि बीमित व्यक्ति सुश्री प्रमिला त्रिपाठी लेने के समय अस्वस्थ मोटापा जैसी बीमारी से ग्रसित थी जिसे उसने छिपाया । अतः ऊपर उल्लिखित बीमा शर्तों के अनुसार उसका दावा अकारण और वैध रूप से अभिखण्डित किया गया, पूरी तरह धराशयी हो जाता है । परिणामस्वरूप, अदालत की राय में याचिका स्वीकार एवं आज्ञप्त किए जाने योग्य है ।"

3. **याचीकर्ता का पक्ष**

(क) याची (भारतीय जीवन बीमा निगम) का पक्ष उसकी विद्वान् काउंसेल सुश्री अंजली गोकलानी ने प्रबलता से इस न्यायालय के समक्ष रखा । उन्होनें तर्क दिया कि 'स्थायी लोक अदालत' ने विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 की धारा

22ग, की उपधारा 4, 5, 6, व 7 के विभिन्न उपबंधों का साक्षर अनुपालन किए बिना ही विवाद का विनिश्चय, गुण-दोष पर करके, आक्षेपित पंचाट पारित कर दिया, जिसके कारण आक्षेपित पंचाट न केवल न्याय विरुद्ध है, परन्तु विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 के उद्देश्य व इस विधि के निर्माण के कारणों के विरुद्ध भी है ।

(ख) विद्वान् काउंसेल ने आगे अभिकथन किया कि, आक्षेपित पंचाट में किसी भी स्तर पर यह उल्लेखित नहीं किया गया है कि स्थायी लोक अदालत ने पक्षकारों के बीच सुलह कार्यवाही की कोई रीति भी अपनाई हो या पक्षकारों के विवाद को सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचाने के लिए कोई प्रयास ही किया हो । पंचाट में किसी भी स्थान पर यह भी उल्लेखित नहीं है कि पक्षकार किसी करार पर पहुंचने में असफल रहने के कारण, स्थायी लोक अदालत ने विवाद का विनिश्चय गुण-दोष पर करके पंचाट की घोषणा की । अतः आक्षेपित निर्णय न्याय संगत न होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है ।

4. **प्रत्यर्थी सं. 2 का पक्ष**

(क) प्रत्यर्थी सं. 2 (वादी) का पक्ष उसके विद्वान् काउंसेल श्री मनन कुमार चौबे ने रखा । उन्होंने उपरोक्त तर्क व कथन का विरोध किया और कहा कि स्थायी लोक अदालत ने पक्षकारों के मध्य समझौते कराने के प्रयास किए थे तथा इस नाते तारीख 26 अगस्त, 2013 को तारीख निर्धारित भी की थी, जैसा पंचाट में उल्लेखित भी है, परन्तु याचिकाकर्ता (बीमा निगम) ने इस प्रक्रिया के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई व कोई प्रयास करने की कोशिश भी नहीं की । अतः यह कथन करना कि स्थायी लोक अदालत ने पक्षकारों के मध्य विवाद की सुलह कराने का कोई प्रयास नहीं किया, पूर्णत: गलत है । विद्वान् काउंसेल ने अपने कथन के समर्थन में प्रतिउत्तर के प्रस्तर 20 पर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित कराया है ।

(ख) प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी कथन किया कि

एक तरफ बीमा निगम ने समझौते के लिए कोई प्रयास नहीं किया और दूसरी तरफ पंचाट की कार्यवाही में इस विरोध को पंचाट के सदस्यों के समक्ष उठाया भी नहीं, अतः वो अब यह तर्क नहीं ले सकते हैं । बीमा निगम के काउंसेल ने चर्चा के दौरान भी यह मुद्दा पंचो के समक्ष नहीं रखा था । विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम की धारा 22ग व उसकी उपधारा 2, उपधारा 7 में यह कहीं भी उल्लेखित नहीं है कि यदि पक्षकार किसी करार में पहुंचने में असफल होते है तो उस तथ्य का उल्लेख स्पष्ट रूप से पंचाट में होना आवश्यक है । अगर पक्षकारों द्वारा पंचाट की कार्यवाही के दौरान ऐसा विरोध न किया गया हो, तो यह मानना चाहिए कि स्थायी लोक अदालत ने आपसी सुलह के प्रयास अवश्य किए होंगे । याचिका कर्ता के पास गुण-दोष पर पंचाट का विरोध करने का कोई युक्तियुक्त कारण न होने के कारण वह पंचाट का तकनीकी विरोध इस आधार पर कर रहें । जो विधिविरुद्ध हैं ।

5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना व पत्रावली के समस्त दस्तावेजों का सम्यक पूर्वक परिशीलन किया ।

6. **विश्लेषण**

(क) वर्तमान मामले में उद्भूत विधिक प्रश्न, जिसका उल्लेख इस निर्णय के प्रस्तर 1 में किया गया है, उस पर दोनों पक्षों की चर्चा के मद्देनजर, निर्णय लेने के लिए, सर्वप्रथम विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1983 के अधिनियमित करने के उद्देश्य का उल्लेख करना अतिआवश्यक है, जो निम्नलिखित है –

> "समाज के दुर्बल वर्गों को निःशुल्क और सक्षम विधिक सेवा यह सुनिश्चित करने हेतु उपलब्ध कराने के लिए कि आर्थिक या अन्य निर्योग्यताओं के कारण कोई भी नागिरक न्याय पाने के अवसर से वंचित न रह जाए, विधिक सेवा प्राधिकरणों का गठन करने के लिए और यह सुनिश्चित करने हेतु कि विधिक पद्धति के प्रवर्तन से समान अवसर के आधार पर न्याय का संवर्धन हो, लोक अदालतें संगिठत करने के लिए अधिनियम ।"

(ख) उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति के हेतु 'लोक अदालतों के आयोजन' का प्रावधान उक्त अधिनियम के अध्याय 6 में किया गया है । अध्याय 6क, के धारा 22 (ख) की उपधारा (1) में 'स्थायी लोक अदालत' की स्थापना का प्रावधान है । 'लोक अदालत' व 'स्थायी लोक अदालत' में एक महत्वपूर्ण बुनियादी अंतर है । जहां लोक अदालत पक्षकारों के बीच समझौता या परिनिर्धारण करने का प्रयास करेगा और यदि ऐसा न हो पाएगा तो वाद विधि के अनुसार निपटाने के लिए लौटा दिया जाएगा । (देखें उक्त अधिनियम की धारा 20 व उसकी उपधारा) परन्तु उक्त अधिनियम की धारा 22ग के अनुसार 'स्थायी लोक अदालत' मामलों का संज्ञान लेने के उपरान्त सर्वप्रथम पक्षकारों के बीच सुलह कार्यवाही करेगी और स्वतंत्र और निष्पक्ष रीति से सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचने के लिए, पक्षकारों के प्रयास में सहायता करेगी । परन्तु यदि पक्षकार किसी करार पर पहुंचने में असफल रहते हैं और यदि विवाद किसी अपराध से संबंधित नहीं है, उस दशा में ही स्थायी लोक अदालत विवाद का विनिश्चय कर सकती है (देखें उक्त अधिनियम की धारा 22 (ख) व उसकी उपधारा)

(ग) सुलभता के लिए विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1983 की धारा 22ग व उसकी सभी उपधारा निम्न उल्लेखित की जा रही है ।

"22ग. **स्थायी लोक अदालत द्वारा मामलों का संज्ञान –**

(1) किसी विवाद का कोई पक्षकार, विवाद को किसी न्यायालय के समक्ष लाने से पूर्व, विवाद के निपटारे के लिए स्थायी लोक अदालत को आवेदन कर सकेगा परन्तु स्थायी लोक अदालत को ऐसे अपराध से, जो किसी विधि के अधीन शमनीय नहीं है, संबंधित किसी विषय के संबंध में कोई अधिकारिता नहीं होगी परन्तु यह और कि स्थायी लोक अदालत को ऐसे मामले में भी अधिकारिता नहीं होगी जिसमें वादग्रस्त संपत्ति का मूल्य दस लाख रुपए से अधिक है परन्तु यह भी कि केन्द्रीय सरकार राजपत्र में

अधिसूचना द्वारा, केन्द्रीय प्राधिकरण से परामर्श करके दूसरे परंतुक में विनिर्दिष्ट दस लाख रुपए की सीमा को बढ़ा सकेगी ।

(2) स्थायी लोक अदालत को उपधारा (1) के अधीन आवेदन किए जाने के पश्चात्, उस आवेदन का कोई पक्षकार उसी विवाद के लिए किसी न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब नहीं लेगा ।

(3) जहां किसी स्थायी लोक अदालत को उपधारा (1) के अधीन कोई आवेदन किया जाता है वहां वह, –

(क) आवेदन के प्रत्येक पक्षकार को उसके समक्ष लिखित कथन फाइल करने का निर्देश देगी जिसमें आवेदन के अधीन विवाद के तथ्यों और प्रकृति, ऐसे विवाद के मुद्दों या विवाद्यकों और, यथास्थिति, ऐसे मुद्दों या विवाद्यकों के समर्थन में या उसके विरोध में अवलंबित आधारों का कथन होगा और ऐसा पक्षकार ऐसे कथन की अनुपूर्ति में ऐसा कोई दस्तावेज या अन्य साक्ष्य दे सकेगा जिसे ऐसा पक्षकार ऐसे तथ्यों और आधारों के सबूत में समुचित समझता है और ऐसे कथन की एक प्रति ऐसे दस्तावेज या अन्य साक्ष्य, यदि कोई हो, के साथ आवेदन के प्रत्येक पक्षकार को भेजेगी ;

(ख) आवेदन के किसी पक्षकार से सुलह कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम पर उसके समक्ष अतिरिक्त कथन फाइल करने की अपेक्षा कर सकेगी ;

(ग) आवेदन के किसी पक्षकार से, उसे प्राप्त किसी दस्तावेज या कथन को, अन्य पक्षकार को, उसका उत्तर देने के लिए समर्थ बनाने हेतु संसूचित करेगी ।

(4) जब कोई कथन, अतिरिक्त कथन और उत्तर, यदि कोई हो, उपधारा (3) के अधीन स्थायी लोक अदालत के समाधानप्रद रूप में फाइल किया गया है तब वह आवेदन के पक्षकारों के बीच सुलह कार्यवाहियां ऐसी रीति से करेगी जिसे वह विवाद की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उचित समझे ।

(5) स्थायी लोक अदालत उपधारा (4) के अधीन सुलह कार्यवाहियां करने के दौरान पक्षकारों को विवाद के स्वतंत्र और निष्पक्ष रीति में सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचने के लिए, उनके प्रयास में सहायता करेगी ।

(6) आवेदन के प्रत्येक पक्षकार का यह कर्तव्य होगा कि वह आवेदन से संबंधित विवाद की सुलह कराने में स्थायी लोक अदालत के साथ सद्भावनापूर्वक सहयोग करे और स्थायी लोक अदालत के, उसके समक्ष साक्ष्य और अन्य संबंधित दस्तावेज प्रस्तुत करने के निर्देश का अनुपालन करे ।

(7) जब स्थायी लोक अदालत की पूर्वोक्त सुलह कार्यवाहियों में यह राय है कि ऐसी कार्यवाहियों में समझौते के ऐसे तत्व विद्यमान हैं जो पक्षकारों को स्वीकार्य हो सकेंगे, तब वह विवाद के संभाव्य समझौते के निबंधन विरचित कर सकेगी और संबंधित पक्षकार को उनके संप्रेक्षण के लिए देगी और यदि पक्षकार विवाद के समझौते के लिए सहमत हो जाते हैं तो वे समझौता करार पर हस्ताक्षर करेंगे तथा स्थायी लोक अदालत उसके निबंधनानुसार अधिनिर्णय पारित करेगी और उसकी एक-एक प्रति प्रत्येक संबंधित पक्षकार को देगी ।

(8) जहां पक्षकार उपधारा (7) के अधीन किसी करार पर पहुंचने में असफल रहते हैं, वहां यदि विवाद किसी अपराध से संबंधित नहीं है तो स्थायी लोक अदालत, विवाद का विनिश्चय कर देगी ।"

(घ) इस उच्च न्यायालय की एक समवर्ती न्यायपीठ ने उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** श्रीमती कामिनी देवी व अन्य [2017 (9) ए. डी. जे. 44] के निर्णय में अन्य उच्च न्यायालयों के कई निर्णयों को आधार मानते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि स्थायी लोक अदालत का यह एक पवित्र कर्तव्य है कि, वो अपनी बुद्धिमत्ता, ज्ञान व अनुभव का सद्प्रयोग करते हुए पक्षकारों के मध्य समझौता करने का

भरसक प्रयास करेंगे और ऐसे प्रयासों में असफल होने की दशा में ही विवाद का विनिश्चिय गुण-दोष पर कर सकेंगे । समझौते की प्रक्रिया को किए बिना स्थायी लोक अदालत सीधे गुण-दोष पर निर्णय नहीं दे सकते हैं ।

(ङ) इस न्यायालय की एक और समवर्ती न्यायपीठ ने नेशनल बीमा कंपनी लिमिटेड **बनाम** स्थायी लोक अदालत रिट सी नं. 34170/2012 निर्णय तिथि 2.5.2014 में प्रतिपादित किया है कि –

> "वह सभी मामले जो इस न्यायालय के समक्ष आते हैं, निरअपवाद रूप से न्यायालय यह पाता है कि भले ही अधिनियम की धारा 22ग की उपधारा (5) और उपधारा (6), स्थायी लोक अदालत, पर सुलह की कार्यवाही के दौरान समझौता कराने का दायित्व होता है और फिर उपधारा (7) के संदर्भ में एक राय बनाना होता हैं, कि ऐसी कार्यवाही में समझौते के तत्व विद्यमान हैं, जो पक्षकार को स्वीकार्य हो सकते हैं, तो संभावित समझौते के निबंधन विचरित कर सकते हैं और पक्षकारों से टिप्पणियां आमंत्रित की जा सकती हैं । लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि स्थायी लोक अदालतें, उक्त वैधानिक उपबंधों के पूर्णत: विपरीत में गुण-दोष के आधार पर इस मुद्दे पर निर्णय लेने से पहले केवल "समाधान का प्रयास किया परन्तु विफल रहा" का पाठ कर रही है । इस बारे में कोई सामग्री नहीं है कि यह सुलह कब की गई, किस तरीके से और किस तरह से समझौते की शर्तें तैयार की गई ताकि संबंधित पक्षों की टिप्पणियां आमंत्रित की जा सकें । यह न तो प्रावधान की भावना है और न ही इसे सार्वजनिक उपयोगिता सेवा प्रदाता में शामिल करने के लिए एक छल के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है । यह कोई औपचारिकता नहीं है, जिसे यंत्रवत् रूप से निर्वहन किया जाना है । पत्रावली से यह प्रतिबिंबित

होना चाहिए कि एक संभावित समझौते तक पहुंचने के लिए, एक प्रस्तावित समझौता बनाने के लिए वास्तविक और ईमानदार प्रयास किए गए थे और केवल जब प्रस्तावित समझौते को वांछित प्रतिक्रिया नहीं मिलती है, तब ही स्थायी लोक अदालत को गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ना चाहिए ।"

(च) इसके अतिरिक्त एक और समवर्ती न्यायपीठ द्वारा लाइफ इंश्योरेन्स कारपोरेशन ऑफ इंडिया **बनाम** सैयद जैइघम व अन्य; [2015 (8) एडीजे 668] के मामले में इस संदर्भ में स्थायी लोक अदालतों को कुछ दिशा-निर्देश भी दिए गए थे, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वो दिशा-निर्देश स्थायी लोक अदालतों द्वारा पूर्ण रूप से अपनाए नहीं जा रहे हैं । प्रमुख निर्देश हैं कि –

"स्थायी लोक अदालत का मुख्य कार्य परिनिर्धारण कराना है परन्तु पक्षकार जब किसी करार तक नहीं पहुंच पाते हैं तब स्थायी लोक अदालत न्याय निर्णायक निकाय में रूपान्तरित हो जाता है" तथा "स्थायी लोक अदालत को विवाद के पक्षकारों को यह धारणा नहीं बनाने देना चाहिए कि, आरम्भ से ही उसका कार्य न्याय निर्णायक का है ।"

(छ) जैसा कि उक्त अधिनियम की धारा 22ग की उपधारा 3 व 4 में वर्णित है, कि पक्षकारों के लिखित कथन व विवाद के मुद्दों के विवाद्यकों को ध्यान में रखते हुए, पक्षकारों की बीच स्थायी लोक अदालत, सुलह कार्यवाहियां द्वारा पक्षकारों को विवाद के स्वतंत्र और निष्पक्ष रीति में सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचने के लिए उनके प्रयास में सहायता करेगी । अतः यह आवश्यक है कि स्थायी लोक अदालत, उक्त प्रयासों का संक्षेप में अपने आदेश में उल्लेख करे क्योंकि उपधारा (8) के अनुसार यदि पक्षकार किसी करार पर पहुंचने से असफल रहते हैं, उस दशा में ही, स्थायी लोक

अदालत विवाद का विनिश्चय कर सकती हैं (यदि विवाद किसी अपराध से संबंधित नहीं है) । उपधारा (8) तक की स्थिति तक पहुंचने से पहले उपधारा (3), (4), (5) व (6) में किए गए प्रयास व उपधारा (7) में समझौते पर न पहुंचने की स्थिति के उपरान्त ही, स्थायी लोक अदालत, उपधारा (8) के अन्तर्गत गुण-दोष पर निर्णय ले सकती है । अतः उक्त कार्यवाही का उल्लेख, संक्षिप्त में ही सही, परन्तु अवश्य होना चाहिए ।

(ज) उपरोक्त विश्लेषण से यह पूर्णतः विदित होता है कि, स्थायी लोक अदालत, को सर्वप्रथम पक्षकारों को सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचाने के लिए अपनी बुद्धिमत्ता, ज्ञान व अनुभव का उपयोग करके प्रयास करना चाहिए । जो उसका सर्वप्रथम कर्तव्य है । इस प्रयास में असफल होने के उपरान्त ही विवाद का विनिश्चय करना चाहिए । परन्तु उपरोक्त कार्यवाहियों का उल्लेख (संक्षेप में) पंचाट में अवश्य होना चाहिए, जिसमें उसके द्वारा विवाद का विनिश्चय करने का कारण पता चल सके । ऐसा उल्लेखित न होने से यह प्रतीत होगा कि स्थायी लोक अदालत, द्वारा पक्षकारों के बीच समझौता कराने का कोई प्रयास नहीं किया गया, जो उक्त अधिनियम के प्रावधानों का हनन करने के समकक्ष होगा । अतः ऐसी दशा में 'पंचाट' विधिक रूप से मान्य नहीं माना जाएगा । मामले में उत्पन्न विधिक प्रश्न का निर्धारण उपरोक्त वर्णन द्वारा किया जाता है ।

(झ) वर्तमान मामले में पंचाट में समझौते के प्रयास के संबंध में कोई उल्लेख नहीं किया गया है, केवल एक स्थान पर समझौते के लिए तारीख निर्धारित की गई, ऐसा उल्लेखित है, परन्तु उक्त तारीख पर क्या प्रयास किए गए व क्यों पक्षकार समझौता नहीं कर पाए, ऐसा कुछ भी नहीं लिखा गया है । अतः यह प्रतीत होता है 'स्थायी लोक अदालत' ने सौहार्दपूर्ण समझौते के लिए कोई भी प्रयास नहीं किया होगा

या युक्तियुक्त प्रयास की कमी रही होगी तथा वह सीधे विवाद में विनिश्चय की स्थिति पर पहुंच गए जो, उपरोक्त विश्लेषण के पूर्णतः विपरीत है । अतः आक्षेपित पंचाट इसी कारणवश, विधिविरुद्ध व दूषित हो जाता है । क्योंकि यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि स्थायी लोक अदालत द्वारा समझौते की प्रक्रिया का प्रयास किए बिना विवाद पर गुण-दोष पर निर्णय देना अवैधानिक है, अतः इस स्तर पर पंचाट की गुण-दोष पर जांच करने की आवश्यकता नहीं है ।

7. **निष्कर्ष**

उपरोक्त विश्लेषण के फलस्वरूप, आक्षेपित 'पंचाट' निरस्त किया जाता है तथा वाद 'स्थायी लोक अदालत' को प्रतिप्रेषित किया जाता है और निर्देशित किया जाता है कि वो समझौता कराने की प्रक्रिया को अपना कर पक्षकारों के मध्य सुलह कराने का युक्तियुक्त प्रयास करेगी व उसके असफल होने के उपरांत ही वाद का गुण-दोष पर विनिश्चय करेगी तथा समझौते के प्रयास असफल होने का संक्षेप में उल्लेख पंचाट में भी करेगी । उपरोक्त निर्देश के साथ यह याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है ।

याचिका भागत: स्वीकार की गई है ।

मही./क.

ज्योति शंकर पांडा

बनाम

ज्योतिर्मयी दास

(2020 की एम. ए. टी. ए. संख्या 57)

तारीख 7 अक्तूबर, 2021

न्यायमूर्ति एस. के. मिश्रा

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 25(2) – अपील – स्थायी निर्वाह-भत्ते की मात्रा का निर्धारण करना – पति का विवाह-विच्छेद के समय पर टी. सी. एस. में कार्यरत होना – पति के वेतन पर्ची के अनुसार, कटौती के बाद 1,60,000/- रुपए मासिक वेतन होना – स्थायी निर्वाह-भत्ते की मात्रा पक्षकारों की हैसियत को विचार में लेते हुए निर्धारित की जानी चाहिए – पत्नी भी प्रतिमास लगभग 15,000/- रुपए कमाती है – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, स्थायी निर्वाह-भत्ता 40,000/- रुपए से बढ़ाकर 48,000/- रुपए निर्धारित किया जाना – विवाह-विच्छेद की दशा में, स्थायी निर्वाह-भत्ता, पक्षकारों की हैसियत को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाना चाहिए, इस मामले में पक्षकारों की हैसियत को देखते हुए स्थायी निर्वाह-भत्ता 48,000/- रुपए निर्धारित करना उचित, समुचित और युक्तियुक्त होगा ।

संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि पति और पत्नी ने तारीख 2 दिसंबर, 2007 को कटक में हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार विवाह कर लिया । तत्पश्चात्, सुविधा के लिए उन्हें अपीलार्थी (पति) और प्रत्यर्थी (पत्नी) के रूप में संदर्भित किया जाएगा । विवाह संपन्न होने के बाद, वे कटक शहर में एक साथ रहने लगे । याची द्वारा समाचारपत्र में प्रकाशित विज्ञापन के आधार पर विवाह को अंतिम रूप दिया गया और विवाह में दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी । वह, उस समय बेंगलुरु में कार्यरत थे और विवाह के 7 दिनों के बाद, वह अपने कार्यस्थल पर लौट आया और प्रत्यर्थी ओयूएटी, भुवनेश्वर लौट आई, क्योंकि वह वहां पढ़ रही थी । जनवरी, 2008 में प्रत्यर्थी बेंगलुरु गई और एमसीए

पाठ्यक्रम के लिए अपना प्रोजेक्ट कार्य पूर्ण किया । धीरे-धीरे, प्रत्यर्थी का व्यवहार असामाजिक, अपमानजनक और अपीलार्थी की सामाजिक प्रतिष्ठा के विरुद्ध हो गया । उसने अपीलार्थी को कुटुंब के सदस्यों से दूर रहने के लिए मजबूर किया । प्रत्यर्थी के माता-पिता ने भी उस पर अपने माता-पिता के साथ न रहने के लिए दबाव डाला । प्रत्यर्थी ने सितंबर, 2008 में अपीलार्थी का घर छोड़ दिया । कोई अन्य रास्ता न निकलने पर और जब अपीलार्थी की जानकारी में आया कि प्रत्यर्थी ने उसके विरुद्ध 2010 का जी. आर. मामला सं 1053 के अधीन आपराधिक मामला फाइल किया है और अपीलार्थी (पति) के पिता को जेल भिजवा दिया है तो अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध विवाह-विच्छेद की याचिका फाइल की और प्रत्यर्थी ने भी स्थायी भरणपोषण भत्ता के लिए याचिका फाइल की । न्यायालय द्वारा भागतः याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दोनों पक्षकार विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए सहमत हो गए हैं । स्वीकृततः, अपीलार्थी विवाह-विच्छेद के समय पर टी. सी. एस. में कार्य कर रहा था और अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई आयकर विवरणी से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी का वेतन प्रतिमास 2,50,000/- रुपए से अधिक है । यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि आयकर विभाग के सक्षम प्राधिकारी द्वारा उपलब्ध की गई जानकारी निर्धारण वर्ष 2016-2017 के लिए थी लेकिन निर्णय तारिख 29 फरवरी, 2020 को पारित किया था । प्रत्यर्थी ने निर्धारण वर्ष 2018-2019 और 2019-2020 के लिए आयकर विभाग के सक्षम प्राधिकारी से अभिलेख मांगने के लिए तारीख 2 जुलाई, 2019 को एक और आवेदन फाइल किया जिसको तारीख 5 अगस्त, 2019 के आदेश द्वारा नामंजूर कर दिया गया और ऐसे खारिज आदेश के विरुद्ध, प्रत्यर्थी ने 2019 की रिट याचिका (सी.) सं. 16088 फाइल की है जो न्यायनिर्णयन के लिए लंबित है । अपीलार्थी की वेतन पर्ची से यह प्रकट होता है कि अपीलार्थी का वेतन प्रदर्श-21 के अनुसार फरवरी, 2020 के मास में 2,57,259/- रुपए था और भविष्य निधि, व्यवसायिक, कर, स्वैच्छिक भविष्य निधि, स्वास्थ्य बीमा योजना प्रीमियम, एनपीएस, एनपीएस प्रसंस्करण शुल्क इत्यादि की कटौती के पश्चात् उसका वेतन 1,44,914/- रुपए है । विधि सुव्यवस्थित यह है कि स्थायी निर्वाह-भत्ता

की मात्रा पक्षकारों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए निर्धारित की जानी चाहिए । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हमें यह महसूस होता है कि स्थायी निर्वाह-भत्ता की मात्रा काफी कम है । यह हमारी दृष्टि में लाया गया है कि अपीलार्थी वेतन के रूप में प्रतिमास 2,50,000/- रुपए अर्जित कर रहा था । जिसमें से लगभग 33 प्रतिशत आयकर के लिए कटौती होती है जो लगभग 83,000/- रुपए होता है । इसलिए, उसका कुल वेतन (जीपीएफ, स्वास्थ्य बीमा योजना प्रीमियम आदि में उनका योगदान सम्मिलित है) लगभग 1,60,000/- रुपए बनता है । प्रत्यर्थी इसका एक-चौथाई भाग पाने की हकदार है जो लगभग प्रतिमास 40,000/- रुपए बनता है । प्रत्यर्थी प्रतिमास लगभग 15,000/- रुपए की राशि भी अर्जित कर रही है । इसलिए, प्रत्यर्थी मासिक धनराशि प्रतिमास 25,000/- रुपए पाने की हकदार है और प्रति वर्ष यह 3,00,000/- रुपए की राशि बनती है । चूंकि पक्षकारों की आयु सिविल प्रक्रिया के फाइल करने के समय 35 और 40 वर्ष थी, इस प्रकार इस मामले में गुणांक 16 लागू किया जाना चाहिए । इसलिए, कुल राशि 48,00,000/- रुपए बनती है । विधि की उपरोक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को विचार में लेते हुए और मूल्य सूचकांक को ध्यान में रखते हुए, इसमें स्थायी निर्वाह-भत्ते को 40,00,000/- रुपए से बढ़ाकर 48,00,000/- रुपए करना उचित और समुचित होगा । तद्नुसार, हम स्थायी निर्वाह-भत्ता 40,00,000/- रुपए से बढ़ाकर 48,00,000/- रुपए करते हैं । उक्त राशि आज से 3 महीने के भीतर अपीलार्थी (पति) द्वारा प्रत्यर्थी (पत्नी) को संदाय की जाएगी । प्रत्यर्थी (पत्नी) को अंतरिम भरणपोषण के लिए जो राशि पहले ही संदत्त की जा चुकी है, उसे नजरअंदाज किया जाना चाहिए क्योंकि इसका भुगतान न्यायालय पारित अंतरिम आदेश द्वारा किया गया है यह अपेक्षित नहीं है कि कुटुंब प्रत्यर्थी (पत्नी) ने उक्त धन खर्च किए बिना अपना जीवनयापन किया है । मामले को ध्यान में रखते हुए, पत्नी द्वारा फाइल की गई 2020 की एम. ए. टी. ए. सं. 61 को मंजूर करके निपटारा किया जाता है और पति द्वारा फाइल की गई 2020 की एम. ए. टी. ए. सं. 57 को खारिज की जाती है । (पैरा 12, 15, 16, 17, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2015] (2015) 5 एस. सी. सी. 705 =
ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 2025 :
शमीमा फारूकी बनाम **शाहिद खान** ; 14

[2011] ए. आई. आर. 2011. एस. सी. 2748 :
विन्नी परमवीर परमार बनाम **परमवीर परमार** । 13

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2020 की एम. ए. टी. ए. संख्या 57.

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 25 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से ए. पी. बोस, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से मिलन कानूनगो, ज्येष्ठ अधिवक्ता

न्यायमूर्ति एस. के. मिश्रा – दोनों अपीलें 2012 की सिविल कार्यवाही सं. 420 में विद्वान् न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, कटक द्वारा पारित निर्णय और आदेश तारीख 29 फरवरी, 2020 से उद्भूत हुई हैं ।

2. 2020 की एम. ए. टी. ए. सं. 57 पति-ज्योति शंकर पांडा के कहने पर फाइल की गई है, जिसमें स्थायी भरणपोषण भत्ता की मात्रा को 40,00,000/- रुपए से घटाकर 22,00,000/- रुपए करने की प्रार्थना की गई है, जबकि 2020 एम. ए. टी. ए. की सं. 61 पत्नी-ज्योतिर्मयी दास के कहने पर फाइल की गई है, जिसमें स्थायी भरणपोषण भत्ता बढ़ाने की प्रार्थना की गई है । चूंकि उपरोक्त दोनों अपीलें एक ही निर्णय से उद्भूत हुई हैं और दोनों पक्षों ने स्थायी भरणपोषण भत्ता की मात्रा पर अपने दावे किए हैं, इसलिए, मामले की सुनवाई एक साथ की गई ।

3. कुटुंब न्यायालय में याची (पति) का पक्षकथन यह था कि उसने और प्रत्यर्थी (पत्नी) ने तारीख 2 दिसंबर, 2007 को कटक में हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार विवाह कर लिया । तत्पश्चात्, सुविधा के लिए उन्हें अपीलार्थी (पति) और प्रत्यर्थी (पत्नी) के रूप में संदर्भित किया जाएगा । विवाह संपन्न होने के बाद, वे कटक शहर में एक साथ रहने लगे । याची द्वारा समाचारपत्र में प्रकाशित विज्ञापन के आधार पर विवाह को अंतिम रूप दिया गया और विवाह में दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी । वह, उस समय बेंगलुरु में कार्यरत थे और विवाह के 7 दिनों के

बाद, वह अपने कार्यस्थल पर लौट आया और प्रत्यर्थी ओयूएटी, भुवनेश्वर लौट आई, क्योंकि वह वहां पढ़ रही थी । जनवरी, 2008 में प्रत्यर्थी बेंगलुरु गई और एमसीए पाठ्यक्रम के लिए अपना प्रोजेक्ट कार्य पूर्ण किया । धीरे-धीरे, प्रत्यर्थी का व्यवहार असामाजिक, अपमानजनक और अपीलार्थी की सामाजिक प्रतिष्ठा के विरुद्ध हो गया । उसने अपीलार्थी को कुटुंब के सदस्यों से दूर रहने के लिए मजबूर किया । प्रत्यर्थी के माता-पिता ने भी उस पर अपने माता-पिता के साथ न रहने के लिए दबाव डाला । प्रत्यर्थी ने सितंबर, 2008 में अपीलार्थी का घर छोड़ दिया । कोई अन्य निष्कर्ष न निकलने पर और जब अपीलार्थी की जानकारी में यह आया कि प्रत्यर्थी ने उसके विरुद्ध 2010 का जी. आर. मामला संख्या 1053 के अधीन आपराधिक मामला फाइल किया है और अपीलार्थी (पति) के पिता को जेल भेज दिया है । तत्पश्चात् अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध विवाह-विच्छेद का मामला फाइल किया ।

4. कुटुंब न्यायालय द्वारा जारी किए गए नोटिस के अनुसरण में, मामले में उपस्थित हुए प्रत्यर्थी ने अपना लिखित कथन फाइल किया । लिखित कथन में उनका यह आधार था कि अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए सभी मामले झूठे थे । उसने यह दावा किया कि 2,00,000/- रुपए नकद, सोने और चांदी के आभूषण के साथ घरेलू सामान विवाह के समय अपीलार्थी को दिए गए थे और अपना अध्ययन पूरा करने के बाद, उसने बेंगलुरु में अपीलार्थी के साथ अपनी ड्यूटी ग्रहण की थी जहां अपीलार्थी का छोटा भाई और बहन उसके साथ में रह रहे थे । प्रत्यर्थी का पक्षकथन है कि अपीलार्थी के भाई और बहन द्वारा उसके साथ क्रूरता, दुर्व्यवहार, उत्पीड़न किया गया था और अपीलार्थी ने समस्या को समझते हुए कुटुंब न्यायालय को आश्वासन दिया था कि वह दूसरे घर की व्यवस्था करेगा और वह उसे बेंगलुरु ले जाएगा, लेकिन अपीलार्थी उसके पास कभी नहीं आया, बल्कि उसने दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन के लिए एक झूठा मामला फाइल किया, हालांकि प्रत्यर्थी ने उसे कभी नहीं छोड़ा । बल्कि, दहेज की मांग और लगातार यातना के कारण, प्रत्यर्थी को अपीलार्थी और उसके माता-पिता के विरुद्ध एक दांडिक मामला फाइल करने के लिए मजबूर होना पड़ा । सुलह के दौरान, अपीलार्थी प्रत्यर्थी के समाज में शामिल होने के लिए सहमत नहीं हुआ,

इसलिए, दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन का मामला वापस ले लिया । प्रत्यर्थी ने विवाह-विच्छेद की इच्छा तभी व्यक्त की जब उसे अपीलार्थी से स्थायी निर्वाह-भत्ता के रूप में 60,00,000/- रुपए मिले ।

5. दोनों पक्षकारों के अभिवचनों के पूर्ण होने पर, विद्वान् न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय ने निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

1. यदि प्रत्यर्थी, अपीलार्थी की विधिक रूप से विवाहित पत्नी होने के नाते, उसके प्रति क्रूरता दिखाती है और उसे छोड़ भी देती है, जिसके लिए अपीलार्थी विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार है ।

2. पक्षकार किसी अन्य अनुतोष के हकदार हैं ।

6. पक्षकरों को सुनने के बाद, विवाद्यक सं. 1 का निपटारा करते हुए, विद्वान् न्यायाधीश कुटुंब न्यायालय, कटक ने यह अभिनिर्धारित किया कि क्रूरता की दलीलें दोनों पक्षकारों ने एक-दूसरे के सामने रखी और विवाह के बाद दोनों मुश्किल से 8-9 महीने तक एक साथ रहे और तारीख 7 नवंबर, 2008 से लगभग 12 वर्षों तक वे एक दूसरे से अलग रहे हैं । ऐसे मामले में, कुटुंब न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उन्हें एक साथ रहने के लिए मजबूर करने का कोई लाभदायक प्रयोजन नहीं होगा । बल्कि, विद्वान् न्यायाधीश, कुंटुब न्यायालय, कटक ने विवाह के विघटन की घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित कर दी । इसी प्रकार, विवाद्यक सं. 2 का निपटान करते हुए, विद्वान् न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, कटक ने यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों शिक्षित व्यक्ति हैं और अपीलार्थी इन्फोसिस कंपनी में काम कर रहा था और वह 1,70,000/- रुपए प्रतिमास अर्जित कर रहा था । दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संविदा के आधार पर एक विद्यालय में सेवारत थी और 7,500/- रुपए प्रतिमास अर्जित कर रही थी । अभिलेख पर प्रस्तुत सभी सामग्री और तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् कि अपीलार्थी की उस समय आयु 40 वर्ष थी और प्रत्यर्थी की आयु 35 वर्ष थी, सिविल न्यायालय ने अपीलार्थी की आय से प्रत्यर्थी को उसके भरणपोषण के लिए प्रति माह 15,000/- रुपए का अंतरिम भरणपोषण भत्ता देने का निर्णय लिया और प्रत्यर्थी को 40,00,000/- रुपए का स्थायी निर्वाह-भत्ता मंजूर किया ।

7. कुटुंब न्यायालय द्वारा यथानिर्धारित स्थायी निर्वाह-भत्ता की मात्रा से व्यथित होकर, अपीलार्थी/पति ने स्थायी निर्वाह-भत्ते को 40 लाख रुपए से घटाकर 22 लाख रुपए करने के लिए 2020 की एम. ए. टी. ए. सं. 57 फाइल की । इसी प्रकार, उसी आक्षेपित निर्णय से व्यथित होकर, प्रत्यर्थी-पत्नी ने स्थायी निर्वाह-भत्ता की मात्रा बढ़ाने के लिए उसी तारीख को 2020 की एम. ए. टी. ए. सं. 61 को फाइल की है ।

8. दोनों पक्षकारों ने उनके बीच हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करने से विवाह के विघटन के संबंध में कोई प्रश्न नहीं उठाया और उनकी मात्र एक शिकायत विद्वान् न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, कटक द्वारा मंजूर किए गए स्थायी निर्वाह-भत्ता की मात्रा के संबंध में है ।

9. अब प्रश्न विचारणीय है कि प्रत्यर्थी को मंजूर किए जाने वाले स्थायी निर्वाह-भत्ते की उचित मात्रा क्या होनी चाहिए । विद्वान् न्यायाधीश कुटुंब न्यायालय, कटक ने पत्नी को पति द्वारा संदत्त किए जाने वाले 40,00,000/- रुपए का स्थायी निर्वाह-भत्ता मंजूर किया ।

10. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि 40,00,000/- रुपए की उक्त राशि पक्षकारों की हैसियत और अपीलार्थी द्वारा प्राप्त वेतन को विचार में लेते हुए बहुत कम हैं । विद्वान् न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, कटक प्रदर्श-ए/6 (अपीलार्थी की आयकर विवरणी प्रमाणपत्र की 7 शीट) और प्रदर्श-जी (अपीलार्थी के टीडीएस प्ररूप) फाइल करने में विफल रहा, अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए दस्तावेजों और स्थायी निर्वाह-भत्ता की गणना करने का यह अवलंब लिया कि अपीलार्थी 2,50,000/- रुपए का वेतन प्राप्त कर रहा था । तथापि, उन तथ्यों को नजर अंदाज करते हुए, विद्वान् न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, कटक ने निर्वाह-भत्ता काफी कम कर दिया । इसलिए, भरणपोषण की मात्रा बढ़ाई जानी चाहिए ।

11. तथापि, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को सदैव वापस लाने की कोशिश की, लेकिन उसने आने से इनकार कर दिया । उसने अपीलार्थी की ओर से प्रत्यर्थी के आचरण को सिद्ध करने के लिए प्रदर्श-22 श्रृंखला का अवलंब लिया । अपीलार्थी ने हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन एक याचिका

फाइल की, लेकिन ऐसा नोटिस प्राप्त होने पर, प्रत्यर्थी ने आश्चर्यजनक रूप से दंड संहिता की धारा 498ए के अधीन एक झूठा मामला फाइल किया, जो दोषमुक्त होने के साथ समाप्त हो गया, जो ससुराल वालों के प्रति मानसिक क्रूरता के समान है । अपीलार्थी ने अंतरिम भरणपोषण के रूप में (लगभग) 11,00,000/- रुपए संदत्त किए हैं और उससे अधिक तथा 40,00,000/- रुपए से अधिक के उक्त निर्धारण अपीलार्थी के लिए बहुत कठोर (अप्रिय) है । इसलिए, स्थायी निर्वाह-भत्ते की राशि कम की जानी चाहिए ।

12. इस न्यायालय ने उपरोक्त सभी तथ्यों और इस तथ्य को विचार में लिया है कि दोनों पक्षकार विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए सहमत हो गए हैं । स्वीकृततः, अपीलार्थी विवाह-विच्छेद के समय पर टी. सी. एस. में कार्य कर रहा था और अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई आयकर विवरणी से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी का वेतन प्रतिमास 2,50,000/- रुपए से अधिक है । यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि आयकर विभाग के सक्षम प्राधिकारी द्वारा उपलब्ध की गई जानकारी निर्धारण वर्ष 2016-2017 के लिए थी लेकिन निर्णय तारिख 29 फरवरी, 2020 को पारित किया था । प्रत्यर्थी ने निर्धारण वर्ष 2018-2019 और 2019-2020 के लिए आयकर विभाग के सक्षम प्राधिकारी से अभिलेख मांगने के लिए तारीख 2 जुलाई, 2019 को एक और आवेदन फाइल किया जिसको तारीख 5 अगस्त, 2019 के आदेश द्वारा नामंजूर कर दिया गया और ऐसे खारिज आदेश के विरुद्ध, प्रत्यर्थी ने 2019 की रिट याचिका (सी.) सं. 16088 फाइल की है जो न्यायनिर्णयन के लिए लंबित है । अपीलार्थी की वेतन पर्ची से यह प्रकट होता है कि अपीलार्थी का वेतन प्रदर्श 21 के अनुसार फरवरी, 2020 के मास में 2,57,259/- रुपए था और भविष्य निधि, व्यवसायिक, कर, स्वैच्छिक भविष्य निधि, स्वास्थ्य बीमा योजना प्रीमियम, एनपीएस, एनपीएस प्रसंस्करण शुल्क इत्यादि की कटौती के पश्चात् उसका वेतन 1,44,914/- रुपए है ।

13. **विन्नी परमवीर परमार** बनाम **परमवीर परमार**[1] वाले मामले

[1] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 2748.

में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैरा 12 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "धारा 25 के अनुसार, पति-पत्नी में से किसी एक के स्थायी निर्वाह और भरणपोषण के दावे पर विचार करते हुए, प्रत्यर्थी की स्वयं की आय और अन्य संपत्ति, और आवेदक की आय और अन्य संपत्ति मामले की अन्य परिस्थितियों और पक्षकारों के आचरण के अतिरिक्त सभी प्रासंगिक सामग्री हैं । यह देखा गया है कि ऐसे मामले पर विचार करने वाले न्यायालय को उपरोक्त सभी प्रासंगिक सामग्रियों पर विचार करना होगा और धनराशि निर्धारित करनी होगी जो जीवनयापन के लिए उचित हो..."

14. **शमीमा फारूकी** बनाम **शाहिद खान**[1] वाले मामले में, न्यायालय द्वारा इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "15.....एक महिला, जो वैवाहिक घर छोड़ने के लिए बाध्य है, को यह महसूस करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए कि उसके अनुग्रह में गिरावट आई है और जीवनयापन की व्यवस्था के लिए इधर-उधर भटकती रहती है । विधि के अनुसार, वह उसी तरह से जीवन जीने की हकदार है जैसे वह अपने पति के घर में रहती थी और यहीं पर पति की हैसियत स्थिति और स्तर की भूमिका निभाने में मायने रखता है और कि जहां पर पति का विधिक दायित्व प्रमुख हो जाता है ।"

15. यह सुव्यवस्थित विधि है कि स्थायी निर्वाह-भत्ता की मात्रा पक्षकारों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए निर्धारित की जानी चाहिए । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हमें यह महसूस होता है कि स्थायी निर्वाह-भत्ता की मात्रा काफी कम है ।

16. हमारी दृष्टि में यह लाया गया है कि अपीलार्थी वेतन के रूप में प्रतिमास 2,50,000/- रुपए अर्जित कर रहा था । जिसमें से लगभग 33 प्रतिशत आयकर के लिए कटौती होती है जो लगभग 83,000/- रुपए होता है । इसलिए, उसका कुल वेतन (जीपीएफ, स्वास्थ्य बीमा योजना प्रीमियम आदि में उनका योगदान सम्मिलित है) लगभग 1,60,000/-

---

[1] (2015) 5 एस. सी. सी. 705 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 2025.

रुपए बनता है । प्रत्यर्थी इसका एक-चौथाई भाग पाने की हकदार है जो लगभग प्रतिमास 40,000/- रुपए बनता है । प्रत्यर्थी प्रतिमास लगभग 15,000/- रुपए की राशि भी अर्जित कर रही है । इसलिए, प्रत्यर्थी मासिक धनराशि प्रतिमास 25,000/- रुपए पाने की हकदार है और प्रति वर्ष यह 3,00,000/- रुपए की राशि बनती है । चूंकि पक्षकारों की आयु सिविल प्रक्रिया के फाइल करने के समय 35 और 40 वर्ष थी, इस प्रकार इस मामले में गुणांक 16 लागू किया जाना चाहिए । इसलिए, कुल राशि 48, 00,000/- रुपए बनती है ।

17. विधि की उपरोक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को विचार में लेते हुए और मूल्य सूचकांक को ध्यान में रखते हुए, इसमें स्थायी निर्वाह-भत्ते को 40,00,000/- रुपए से बढ़ाकर 48,00,000/- रुपए करना उचित और समुचित होगा ।

18. तद्नुसार, हम स्थायी निर्वाह-भत्ता 40,00,000/- रुपए से बढ़ाकर 48,00,000/- रुपए करते हैं । उक्त राशि आज से 3 महीने के भीतर अपीलार्थी (पति) द्वारा प्रत्यर्थी (पत्नी) को संदाय की जाएगी । प्रत्यर्थी (पत्नी) को अंतरिम भरणपोषण के लिए जो राशि पहले ही संदत्त की जा चुकी है, उसे नजरअंदाज किया जाना चाहिए क्योंकि इसका भुगतान न्यायालय पारित अंतरिम आदेश द्वारा किया गया है यह अपेक्षित नहीं है कि कुटुंब प्रत्यर्थी (पत्नी) ने उक्त धन खर्च किए बिना अपना जीवन यापन किया है ।

19. मामले को ध्यान में रखते हुए, पत्नी द्वारा फाइल की गई 2020 की एम. ए. टी. ए. सं. 61 को मंजूर करके निपटारा किया जाता है और पति द्वारा फाइल 2020 की एम. ए. टी. ए. सं. 57 खारिज की जाती है ।

20. टी. सी. आर. तुरंत वापस लौटाया जाए ।

21. उचित आवेदन पर इस आदेश की तत्काल प्रमाणित प्रति प्रदान की जाए ।

22. **न्यायमूर्ति सावित्री राठो** – मैं सहमत हूं ।

याचिका भागतः मंजूर की गई ।

मही./क.

———————

हरिकृष्णा इंजीनियरिंग वर्क्स और अन्य

बनाम

सिंडिकेट बैंक और अन्य

(2016 की आर/लेटर्स पेटेंट अपील सं. 1348)

तारीख 19 जनवरी, 2021

न्यायमूर्ति विनीत कोठारी और न्यायमूर्ति गीता गोपी

लेटर्स पेटेन्ट अपील के खण्ड 15 के अधीन अपील [सपठित प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण तथा वित्तीय संपत्ति और सुरक्षा हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 13(4), 17 (2016 के अधिनियम सं. 44 द्वारा यथासंशोधित)] – अपील – ऋणियों द्वारा कार्यशील पूंजी ऋण स्वीकृति का संवितरण की मांग करना – स्वीकृत ऋण के संवितरण की प्रतिज्ञा के विश्वास पर औद्योगिक इकाई में भौतिक निवेश किया जाना – ऋण के दुरुपयोग और उचित रूप से ऋण खाते के गैर-संचालन के आधार पर आगे ऋण वितरित करने के लिए बैंक का इनकार करना – ऋणी के खाते का गैर-निष्पादन संपत्ति घोषित किया जाना – ऋणी, वसूली प्रक्रिया रोकने के लिए सप्रतिज्ञा विबंधन का अभिवाक् उद्भूत नहीं हो सकता – यदि किसी व्यक्ति (ऋणी सहित) के विरुद्ध एसएआरएफएईएसआई अधिनियम, 2002 की धारा 13 के अधीन कार्यवाहियां की जाती हैं तो वह उक्त अधिनियम की धारा 17 के अधीन उन कार्यवाहियों के विरुद्ध अपील फाइल कर सकता है जिसका निपटारा गुणागुणों के आधार पर किया जा सकता है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि हमारे समक्ष अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री बी. एम. मंगुकिया, ने यह तर्क दिया है कि मामले का मुख्य सार, जो अपीलार्थी को विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा यथानिर्देशित ऐसे वैकल्पिक उपाय का उपयोग करने की अनुमति नहीं देता है, वह यह है कि प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक अपीलार्थी मैसर्स नीलकंठ एंटरप्राइज के पक्षकार में स्वीकृत कार्यशील पूंजी ऋण का संदाय करने में

विफल रहा । अपीलार्थियों में से एक मैसर्स नीलकंठ एंटरप्राइज के पक्षकार में स्वीकृत, जो कि मैसर्स हरिकृष्णा इंजीनियरिंग वर्क्स की सहायक कंपनी है, इस तथ्य के बावजूद कि उक्त अपीलार्थी मैसर्स नीलकंठ एंटरप्राइज ने इस प्रकार के स्वीकृत ऋण के संवितरण के प्रतिज्ञा के विश्वास पर उक्त औद्योगिक इकाई में पर्याप्त निवेश किया था । 14 करोड़ रुपए की सीमा तक नीलकंठ एंटरप्राइज और हालांकि अपीलार्थियों ने 20 करोड़ रुपए से अधिक का निवेश किया था, प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक द्वारा उक्त स्वीकृत कार्यशील पूंजी ऋण के समय पर और समय पर संवितरण के अभाव में, पूरी परियोजना पर विराम लग गया और इसलिए, सप्रतिज्ञ विबंधन के सिद्धांतों को लागू करते हुए, अपीलार्थियों द्वारा मैसर्स नीलकंठ उद्यम के पक्षकार में उक्त ऋण के संवितरण की ईप्सा करने वाली फाइल की गई रिट याचिका मंजूर किए जाने योग्य है । उसने यह भी दलील दी है कि यह अनुतोष एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 17 के उपबंधों के अधीन ऋण वसूली अधिकरण द्वारा मंजूर नहीं किया जा सकता है और इसके परिणामस्वरूप, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपीलार्थियों को ऐसे वैकल्पिक उपाय का उपभोग करने से संबंधित त्रुटि की है । यह भी निवेदन किया है कि स्वीकृत कार्यशील पूंजी ऋण की संपूर्ण राशि वितरित करने के लिए प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक की ओर से प्रतिज्ञा के पूरा करने के अभाव में, प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक गैर-अनुपालन खाते के रुपए में ऋण खातों को घोषित करते हुए वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 13 के अधीन वसूली उपायों का आह्वान करने का हकदार नहीं है और इसके परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक के भाग पर संपूर्ण कार्रवाई इन दो सहायक संस्थाओं के विरुद्ध एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन तारीख 12 अगस्त, 2016 का नोटिस करके शुरू की गई । इससे व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय इस प्रक्रम पर काफी आश्चर्यचकित है, जिस पर ऋण वितरित करने के परमादेश की यह प्रार्थना एसएआरएफएईएसआई

अधिनियम की धारा 13 के अधीन वसूली के उपायों की शुरुआत के पश्चात् की गई है और जो स्पष्ट रूप से अहानिकर प्रार्थना के पीछे याचियों के वास्तविक छिपे हुए अंतर्ज्ञान को प्रकट करता है । यद्यपि ऐसी वसूली कार्रवाई ऋण की मंजूरी के एक वर्ष की अवधि के बाद ही शुरू की गई प्रतीत होती है, लेकिन हम यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकते हैं कि वास्तव में एसएआरएफएईएसआई अधिनियम के अधीन वसूली के लिए ऐसी कार्रवाई अवैध होगी । ऋण के संवितरण के लिए सप्रतिज्ञ विबंधन के आधार पर अपीलार्थियों द्वारा स्थापित मामले को एसएआरएफएईएसआई विधि के अधीन वसूली प्रक्रिया को रोकने की अनुमति नहीं दी जा सकती है । हम इस तथ्य से भी अवगत हैं कि एक मैसर्स हरिकृष्णा इंजीनियरिंग वर्क्स श्री नितिन मेहता की स्वामित्व वाली संस्था है, जबकि दूसरी फर्म मैसर्स नीलकंठ एंटरप्राइज एक साझेदारी फर्म है, जिसमें श्री नितिन मेहता ने भी कहा है कि कुटुंब के अन्य सदस्यों के साथ भागीदार होना प्रतीत होते हैं । इसलिए, सभी ऋणी जो हमारे समक्ष अपीलार्थी के रूप में हैं, एक ही परिवार के सदस्य हैं और तीन के पक्ष में ऋण खाते हैं, इसलिए, अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं और प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक उन्हें उक्त व्यक्तियों की साख से संतुष्ट होने के बाद ही कर सकता है । वर्ष 2015 में इन ऋणों को स्वीकृति दी है । तथापि, आगे चलकर, यदि बैंक यह पाता है कि ऋण राशि का दुरुपयोग किया जा रहा है और ऋण खातों को उचित रूप से संचालित या संचालित नहीं किया जा रहा है और बैंक किसी और ऋण राशि को वितरित करने से इनकार करता है, तो ऋणी सप्रतिज्ञ विबंधन अभिवाक् उद्भूत नहीं कर सकते हैं और प्रथम सम्पूर्ण ऋण राशि के संवितरण की मांग कर सकते हैं, इसके बावजूद बैंक ने इसे अनुपयुक्त पाया और प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक के उत्तम हित में नहीं था । विशेषज्ञों और वित्तीय संस्थानों या बैंकों के ऐसे आर्थिक और वित्तीय निर्णयों को रिट अधिकारिता में इस प्रकार के मामलों में न्यायिक जांच के अध्यधीन नहीं कर सकता है, जो केवल शपथपत्रों पर निर्भर है, सबूतों या तथ्यों को पूर्ण रूप से और उचित रूप से साबित किए बिना, जैसा कि साक्ष्य अधिनियम के अनुसार सिविल विचारणों में किया जाता है । इस प्रकार, हमारा सुविचारित मत है कि रिट याचिका को विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा ठीक प्रकार से ही खारिज कर दिया गया है । जहां तक

एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 17 के अधीन वैकल्पिक उपाय के प्रश्न का संबंध है इसके बाद तारीख 1 सितंबर, 2016 के प्रभाव से 2016 के अधिनियम सख्यांक 44 द्वारा संशोधन के बाद व्यक्तियों के स्थान की परिधि और आपत्तियों की प्रकृति की परिधि उक्त विधि में बढ़ा दिया गया है । और एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 17 के उक्त उपबंधों के अधीन केवल ऋणियों को पूर्व में प्रदान किए गए अपील के अधिकार के विरुद्ध, अब प्रतिस्थापित शब्द किसी भी व्यक्ति (ऋणी सहित) द्वारा 'आवेदन' फाइल किए जाने की अनुमति देते हैं । जो एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (4) में निर्दिष्ट किसी भी उपाय से व्यथित है, जो सुरक्षित लेनदार अर्थात् बैंक इत्यादि द्वारा लिया जा सकता है और ऋण वसूली अधिकरण मामले में अधिकारिता रखते हुए विधि के अनुसार ऐसे आवेदन का विनिश्चय करने के लिए बाध्य है । इस प्रकार, ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन किए गए उपायों के विरुद्ध अपीलार्थी ऋणियों द्वारा सप्रतिज्ञ विबंधन और कार्यशील पूंजी ऋण के वांछित संवितरण का अभिवाक् भी आपत्ति के रूप में उठाया जा सकता है । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री बी. एम. मंगुकिया द्वारा दी गई दलील यह है कि वर्तमान रिट याचिका में इस न्यायालय के समक्ष उद्भूत किए गए विवाधक ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष नहीं उठाया जा सकता था, इसलिए यह गलत है और यह खारिज किए जाने योग्य है । तद्नुसार इसे नामंजूर किया जाता है । उपरोक्त कारणों से, हम अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई वर्तमान अपील में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं और यह खारिज किए जाने योग्य है । तद्नुसार, अपील खारिज की जाती है । हम यह स्पष्ट करते हैं कि यदि अपीलार्थी ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष ऐसे वैकल्पिक उपाय का उपभोग करते हैं, तो ऋण वसूली अधिकरण ऐसी आपत्तियों पर विधि के अनुसार अपनी मैरिट के आधार पर निर्णय ले सकता है । (पैरा 14, 15, 16, 17, 18 और 20)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2013] (2013) 15 एस. सी. सी. 341 :
स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम **धर्मेंद्र भोई** ; 19

[2008] (2008) 1 एस. सी. सी. 125 :
ट्रांसकोर बनाम **भारत संघ** ; 19

[1983] ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 848 =
1983 (2) जी. एल. आर. 1352 :
लोटस होटल प्रा. लिमिटेड बनाम **गुजरात राज्य वित्तीय निगम** ; 6, 7

[1981] 1981 (229) जी. एल. आर. 982 =
ए. आई. आर. 1981 गुज. 212 :
गुजरात राज्य वित्तीय बनाम **लोटस निगम होटल्स प्रा. लिमिटेड** । 6, 12

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की आर/लेटर्स पेटेंट अपील सं. 1348.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन अपील ।

याची की ओर से सर्वश्री बी. एम. मंगूकिया, तारक दमानि और बेला ए. प्रजापति

प्रत्यर्थी की ओर से श्री उदय आर. भट्ट

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति विनीत कोठारी ने दिया ।

न्या. कोठारी – यह लेटर्स पेटेंट अपील तारीख 5 दिसंबर, 2016 के उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश ने याची मैसर्स हरिकृष्णा इंजीनियरिंग वर्क्स और अन्य द्वारा फाइल की गई 2016 के विशेष सिविल आवेदन सं. 2029 को खारिज कर दिया था ।

2. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने वित्तीय संपत्ति और सुरक्षा हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (संक्षिप्त में 'एसएआरएफएईएसआई अधिनियम' कहा गया है) इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय के कई निर्णयों का अवलंब लेते हुए, प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण की धारा 17 के अधीन प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक से कतिपय ऋणों के ऋणियों, याचियों के लिए वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के आधार पर ही याचियों द्वारा उक्त रिट याचिका को खारिज कर दिया ।

3. हमारे समक्ष अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री बी. एम. मंगुकिया, ने यह तर्क दिया है कि मामले का मुख्य सार, जो अपीलार्थी को विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा यथानिर्देशित ऐसे वैकल्पिक उपाय का उपयोग करने की अनुमति नहीं देता है, वह यह है कि प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक अपीलार्थी मैसर्स नीलकंठ एंटरप्राइज के पक्षकार में स्वीकृत कार्यशील पूंजी ऋण का संदाय करने में विफल रहा । अपीलार्थियों में से एक मैसर्स नीलकंठ एंटरप्राइज के पक्षकार में स्वीकृत, जो कि मैसर्स हरिकृष्णा इंजीनियरिंग वर्क्स की सहायक कंपनी है, इस तथ्य के बावजूद कि उक्त अपीलार्थी मैसर्स नीलकंठ एंटरप्राइज ने उक्त अपीलार्थी मैसर्स के पक्षकार में इस प्रकार के स्वीकृत ऋण के संवितरण के प्रतिज्ञा के विश्वास पर उक्त औद्योगिक इकाई में पर्याप्त निवेश किया था । 14 करोड़ रुपए की सीमा तक नीलकंठ एंटरप्राइज और हालांकि अपीलार्थियों ने 20 करोड़ रुपए से अधिक का निवेश किया था, प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक द्वारा उक्त स्वीकृत कार्यशील पूंजी ऋण के समय पर और समय पर संवितरण के अभाव में, पूरी परियोजना पर विराम लग गया और इसलिए, सप्रतिज्ञ विबंधन के सिद्धांतों को लागू करते हुए, अपीलार्थियों द्वारा मैसर्स नीलकंठ उद्यम के पक्षकार में उक्त ऋण के संवितरण की ईप्सा करने वाली फाइल की गई रिट याचिका मंजूर किए जाने योग्य है । उसने यह भी दलील दी है कि यह अनुतोष एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 17 के उपबंधों के अधीन ऋण वसूली अधिकरण द्वारा मंजूर नहीं किया जा सकता है और इसके परिणामस्वरूप, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपीलार्थियों को ऐसे वैकल्पिक उपाय का उपभोग करने से संबंधित त्रुटि की है ।

4. यह भी निवदेन किया है कि स्वीकृत कार्यशील पूंजी ऋण की संपूर्ण राशि वितरित करने के लिए प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक की ओर से प्रतिज्ञा के पूरा करने के अभाव में, प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक गैर-अनुपालन खाते के रुपए में ऋण खातों को घोषित करते हुए वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 13 के अधीन वसूली उपायों का आह्वान करने का हकदार नहीं है और इसके परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक के भाग पर संपूर्ण कार्रवाई इन दो सहायक

संस्थाओं के विरुद्ध एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन तारीख 12 अगस्त, 2016 का नोटिस करके शुरू की गई और इसके साझीदार इस न्यायालय द्वारा अभिखंडित किए जाने के योग्य हैं ।

5. उसने आगे यह निवेदन किया है कि मैसर्स हरिकृष्णा इंजीनियरिंग वर्क्स के पक्ष में अन्य ऋण और श्री नितिन मेहता, श्रीमती ज्योत्सना मेहता और श्री सावन मेहता के पक्षकार में गृह ऋण के माध्यम से सावधि ऋण प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक द्वारा विधिवत रूप से वितरित किए गए थे और यहां तक कि मैसर्स नीलकंठ एंटरप्राइज के पक्ष में सावधि ऋण वितरित किया गया था, लेकिन कार्यशील पूंजी ऋण वितरित नहीं किया गया था और इसने औद्योगिक इकाई के विकास की संपूर्ण परियोजना को पटरी से उतार दिया था और इसके परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक उसे वितरित करने की सप्रतिज्ञ विबंधता के सिद्धांतो से बाध्य था ।

6. उसने **लोटस होटल प्रा. लिमिटेड** बनाम **गुजरात राज्य वित्तीय निगम**[1] वाले मामले का अवलंब लिया जो **गुजरात राज्य वित्तीय निगम** बनाम **लोटस होटल्स प्रा. लिमिटेड**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय से उद्भूत हुआ है ।

7. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक के विद्वान् काउंसेल श्री उदय आर. भट्ट ने प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष फाइल किए गए तारीख 23 जनवरी, 2017 के विस्तृत शपथपत्र पर अवलंब लेते हुए दलील दी कि चूंकि उक्त ऋणी अपने ऋण खाते का संचालन अच्छी तरह से नहीं कर रहा था और स्टॉक के माध्यम से पर्याप्त सुरक्षा उपलब्ध नहीं थी और यहां तक कि संयंत्र और मशीनरी का क्रय करने के लिए प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक द्वारा ओवर बिलिंग के मामले पाए गए थे और इसमें अतिरिक्त धन का गैर-जमा था, इसलिए, इन सभी कारणों से, प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक ने उचित रूप से महसूस किया कि उक्त अपीलार्थी को आगे ऋण का संवितरण बैंक के

---

[1] ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 848 = 1983 (2) जी. एल. आर. 1352.

[2] 1981 (229) जी. एल. आर. 982 = ए. आई. आर. 1981 गुज. 212.

उत्तम हित में नहीं होगा, ऐसा न हो कि खाते गैर-संचालन खाते बन गए हों । इसलिए, अपीलार्थी भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय के असाधारण रिट क्षेत्राधिकार का आह्वान करने के हकदार नहीं हैं और कार्यशील पूंजी ऋण की उक्त स्वीकृत राशि को वितरित करने के लिए इस न्यायालय से परमादेश की ईप्सा करते हैं । उसने यह निवेदन किया कि सप्रतिज्ञ विबंधन के सिद्धांत लागू नहीं होते हैं क्योंकि ऋण की स्वीकृत राशि का संवितरण भी तथ्यों के गणित के विस्तृत विश्लेषण पर निर्भर करता है जो प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक की ओर से एक व्यवसाय और आर्थिक निर्णय है । उसने आगे यह दलील दी है कि **लोटस होटल्स प्रा. लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा लिए गए निर्णय का अवलंब वर्तमान मामले में यहां लागू नहीं होता है क्योंकि स्वीकृत सावधि ऋण का संवितरण, जो सुसंगत सामग्री की पूर्वजांच पर निर्भर करता है, कार्यशील पूंजी ऋण के संवितरण से भिन्न है, जो कि कार्यशील पूंजी ऋण अर्थात व्यवसाय का अच्छा संचालन, दृष्टिबंधन के लिए स्टॉक की उपलब्धता, आदि की स्वीकृति के पश्चात् के विकास पर निर्भर करता है और इसलिए, अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई याचिका में गुणागुण नहीं है ।

8. उसने आगे यह दलील दी है कि चूंकि 2016 में अपीलार्थियों के विरुद्ध एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 13 के अधीन उपाय शुरू किए गए हैं और पिछले 4 वर्षों से, इस मुकदमे की लंबितता को देखते हुए कोई प्रभावी उपाय नहीं किया जा सका और अपीलार्थी जानबूझकर इसमें और देरी करने का प्रयत्न किया जा रहा था प्रत्यर्थी द्वारा सिंडिकेट बैंक को एसएआरएफएईएसआई के अधिनियम के उपबंधों के अधीन उनके पास बंधक रखी गई संपत्तियों के विक्रय से देय राशि की वसूली करने की अनुमति नहीं दी जा रही है । उसने आगे यह दलील दी है कि एसएआरएफएईएसआई अधिनियम किसी भी व्यक्ति को एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 17 के अधीन प्रभावी वैकल्पिक उपाय के लिए उपबंध करता है, जो एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 13 के अधीन किए गए उपायों के विरुद्ध कोई आपत्ति उद्भूत करना चाहता है, जो एसएआरएफएईएसआई अधिनियम

की धारा 17 के अधीन आवेदन फाइल कर सकता है और इसलिए, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को खारिज करने का सही निर्णय लिया ।

9. हमने दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना है और प्रतिद्वन्द्वी की दलीलों और बार में उद्धृत निर्णयों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है ।

10. हमारी सुविचारित मत यह है कि अपीलार्थी ऋणी घोड़े को गाड़ी के पीछे बांध कर उसे चलाने का प्रयास कर रहें हैं अर्थात् वे बैंक के विरुद्ध गलत पद्धति अपनाते हुए सप्रतिज्ञ विबंधन का हौआ खड़ा कर रहे हैं उस प्रक्रम पर जब खाते पहले से ही गैर-निष्पादित खाते में बदल गए हैं और बैंक ने एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 13 के अधीन उपायों से वसूली शुरू कर दी है जो कि संसद द्वारा अपने अधिभावी प्रभाव और गैर-अस्थिर उपबंधों के साथ अधिनियमित एक विशेष विधि है, जो बैंकों और वित्तीय संस्थानों को स्वतंत्र शक्ति प्रदान करने के लिए ऋणी की संपत्ति की बिक्री के द्वारा अनिवार्य उपाय द्वारा देयों की वसूली करने के लिए स्वतंत्र शक्ति प्रदान करती है, जो जनता की धनराशि है ।

11. जब वसूली उपायों की शुरुआत की गई है, तब ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 17 के अधीन ऐसे वसूली उपायों के विरुद्ध आपत्ति करने के लिए ऋणी को उपलब्ध उपाय का लाभ उपभोग करने के बजाय, ऋणियों ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन सीधे इस न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान किया है, जैसे कि गैर-निष्पादित खातों को बदलने वाले खातों का दोष स्वयं बैंक पर ही डालना हो । तीन ऋणियों दो फर्मों अर्थात् मैसर्स हरिकृष्णा इंजीनियरिंग वर्क्स और मैसर्स नीलकंठ एंटरप्राइज के पक्ष में प्रश्नगत ऋणों को वर्ष 2015 के मध्य में स्वीकृत किया गया था और लगभग एक वर्ष के बाद ही, ऐसा प्रतीत होता है कि खाते गैर-निष्पादित खाते में बदल गए और बैंक को पूर्वोक्त विशेष विधि अर्थात् एसएआरएफएईएसआई अधिनियम के अधीन वसूली के लिए उपाय शुरू करने पड़े । इन ऋण खातों की निगरानी करते समय, यदि

बैंक यह पाता है कि ऋणी समुचित रीति से व्यवसाय नहीं कर रहा है और ऋण खातों के अधीन उन्हें दिए गए अग्रिम धन का उचित रूप से उपयोग नहीं कर रहा है या स्टॉक या अतिरिक्त धनराशि के रूप में पर्याप्त सुरक्षा उपलब्ध नहीं है तो न्यायालय प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक को पहले ऋणियों को अधिक धनराशि अग्रिम देने के लिए बाध्य नहीं कर सकती है और तत्पश्चात् एसएआरएफएईएसआई विधि के अधीन ऐसी और बकाया राशि की वसूली की मांग कर सकती है । यह आग में घी डालने जैसा होगा ।

12. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री बी. एम. मंगुकिया ने **गुजरात राज्य वित्तीय निगम** बनाम **लोटस होटल्स प्राइवेट लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में निर्णय का अवलंब लिया जो इस मामले पर बिल्कुल भी लागू नहीं होता है । उस मामले में, सावधि ऋण गुजरात राज्य वित्तीय निगम द्वारा स्वीकृत किया गया था और इस प्रकार के स्वीकृत ऋण द्वारा उपलब्ध कराए जाने वाली निधियों की निष्ठा और प्रतिज्ञा के आधार पर उद्यमी ने निवेश किया और गुजरात राज्य वित्तीय निगम, बिना किसी ठोस कारण के, सावधि ऋण की उक्त स्वीकृत राशि को वितरित करने से इनकार कर दिया और इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय की खंडपीठ और माननीय उच्चतम न्यायालय ने, गुजरात राज्य वित्तीय निगम द्वारा फाइल की गई एक अपील में, तथ्यो के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि गुजरात राज्य वित्तीय निगम सप्रतिज्ञ विबंधन के सिद्धांतों से बाध्य हैं और याची मैसर्स लोटस होटल्स प्रा. लिमिटेड को स्वीकृत ऋण के संवितरण से इनकार नहीं कर सकते हैं ।

13. हमारे समक्ष तथ्यों में, प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक ने न केवल उन सावधि ऋणों को मंजूरी दी है, जो प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक द्वारा मंजूरी के अनुसार वितरित किए गए थे, बल्कि एक कार्यशील पूंजी ऋण भी स्वीकृत किया था, जो चरणबद्ध तरीके से वितरित होने के लिए बाध्य था केवल विभिन्न शर्तों के अनुपालन पर, जिसमें आडमान (भाराक्रांति) के लिए पर्याप्त स्टॉक बनाए रखना, अतिरिक्त धनराशि का संदाय आदि सम्मिलित हैं । यदि प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक ने यह पाया था कि ऋणियों

ने समुचित रीति से ऋण राशियों का पूर्ववर्ती वितरण राशि का उपयोग नहीं किया है और वे कार्यशील पूंजी ऋण के रूप में कोई और ऋण राशि वितरित नहीं करने के निर्णय पर विचार करें, न्यायालय स्पष्ट रूप से प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक को ऐसा करने का सीधे निदेश नहीं दे सकता है ।

14. हम इस प्रक्रम पर काफी आश्चर्यचकित हैं, जिस पर ऋण वितरित करने के परमादेश की यह प्रार्थना एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 13 के अधीन वसूली के उपायों की शुरुआत के पश्चात् की गई है और जो स्पष्ट रूप से अहानिकर प्रार्थना के पीछे याचियों के वास्तविक छिपे हुए अंतर्ज्ञान को प्रकट करता है । यद्यपि ऐसी वसूली कार्रवाई ऋण की मंजूरी के एक वर्ष की अवधि के बाद ही शुरू की गई प्रतीत होती है, लेकिन हम यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकते हैं कि वास्तव में एसएआरएफएईएसआई अधिनियम के अधीन वसूली के लिए ऐसी कार्रवाई अवैध होगी । ऋण के संवितरण के लिए सप्रतिज्ञ विबंधन के आधार पर अपीलार्थियों द्वारा स्थापित मामले को एसएआरएफएईएसआई विधि के अधीन वसूली प्रक्रिया को रोकने की अनुमति नहीं दी जा सकती है ।

15. हम इस तथ्य से भी अवगत हैं कि एक मैसर्स हरिकृष्णा इंजीनियरिंग वर्क्स श्री नितिन मेहता की स्वामित्व वाली संस्था है, जबकि दूसरी फर्म मैसर्स नीलकंठ एंटरप्राइज एक साझेदारी फर्म है, जिसमें श्री नितिन मेहता ने भी कहा है कि कुटुंब के अन्य सदस्यों के साथ भागीदार होना प्रतीत होते हैं । इसलिए, सभी ऋणी जो हमारे समक्ष अपीलार्थी के रूप में हैं, एक ही परिवार के सदस्य हैं और तीन के पक्ष में ऋण खाते हैं, इसलिए, अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं और प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक उन्हें उक्त व्यक्तियों की साख से संतुष्ट होने के बाद ही कर सकता है । वर्ष 2015 में इन ऋणों को स्वीकृति दी है । तथापि, आगे चलकर, यदि बैंक यह पाता है कि ऋण राशि का दुरुपयोग किया जा रहा है और ऋण खातों को उचित रूप से संचालित या संचालित नहीं किया जा रहा है और बैंक किसी ओर ऋण राशि को वितरित करने से इनकार करता है, तो ऋणी सप्रतिज्ञ विबंधन अभिवाक् उद्भूत नहीं कर सकते हैं और प्रथम सम्पूर्ण ऋण राशि के संवितरण की मांग कर सकते

हैं, इसके बावजूद बैंक ने इसे अनुपयुक्त पाया और प्रत्यर्थी सिंडिकेट बैंक के उत्तम हित में नहीं था । विशेषज्ञों और वित्तीय संस्थानों या बैंकों के ऐसे आर्थिक और वित्तीय निर्णयों को रिट अधिकारिता में इस प्रकार के मामलों में न्यायिक जांच के अध्यधीन नहीं कर सकता है, जो केवल शपथपत्रों पर निर्भर है, सबूतों या तथ्यों को पूर्ण रूप से और उचित रूप से साबित किए बिना, जैसा कि साक्ष्य अधिनियम के अनुसार सिविल विचारणों में किया जाता है ।

16. इस प्रकार, हमारा सुविचारित मत है कि रिट याचिका को विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा ठीक प्रकार से ही खारिज कर दिया गया है ।

17. जहां तक एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 17 के अधीन वैकल्पिक उपाय के प्रश्न का संबंध है इसके बाद तारीख 1 सितंबर, 2016 के प्रभाव से 2016 के अधिनियम सख्यांक 44 द्वारा संशोधन के बाद व्यक्तियों के स्थान की परिधि और आपत्तियों की प्रकृति की परिधि उक्त विधि में बढ़ा दिया गया है । और एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 17 के उक्त उपबंधों के अधीन केवल ऋणियों को पूर्व में प्रदान किए गए अपील के अधिकार के विरुद्ध, अब प्रतिस्थापित शब्द किसी भी व्यक्ति (ऋणी सहित) द्वारा 'आवेदन' फाइल किए जाने की अनुमति देते हैं । जो एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (4) में निर्दिष्ट किसी भी उपाय से व्यथित है, जो सुरक्षित लेनदार अर्थात् बैंक इत्यादि द्वारा लिया जा सकता है और ऋण वसूली अधिकरण मामले में अधिकारिता रखते हुए विधि के अनुसार ऐसे आवेदन का विनिश्चय करने के लिए बाध्य है । इस प्रकार, ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष एसएआरएफएईएसआई अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन किए गए उपायों के विरुद्ध अपीलार्थी ऋणियों द्वारा सप्रतिज्ञ विबंधन और कार्यशील पूंजी ऋण के वांछित संवितरण का अभिवाक् भी आपत्ति के रूप में उठाया जा सकता है ।

18. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री बी. एम. मंगुकिया द्वारा दी गई दलील यह है कि वर्तमान रिट याचिका में इस न्यायालय के

समक्ष उद्भूत किए गए विवाधक ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष नहीं उठाया जा सकता था, इसलिए यह गलत है और यह खारिज किए जाने योग्य है । तद्नुसार इसे नामंजूर किया जाता है ।

19. उन्हीं कारणों से, **स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक** बनाम **धर्मेंद्र भोई**[1] और **ट्रांसकोर** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के आधार पर अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा सजातीय दलील दी गई है कि विशेष अधिकरण जैसे ऋण वसूली अधिकरण संवैधानिक न्यायालय की तरह कोई अंतर्निहित शक्ति नहीं है और इसलिए इस न्यायालय के समक्ष उसके द्वारा उद्भूत किए गए विवाधक का समाधान नहीं कर सकता, इसे भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है ।

20. उपरोक्त कारणों से, हम अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई वर्तमान अपील में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं और यह खारिज किए जाने योग्य है । तद्नुसार, अपील खारिज की जाती है । हम यह स्पष्ट करते हैं कि यदि अपीलार्थी ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष ऐसे वैकल्पिक उपाय का उपभोग करते हैं, तो ऋण वसूली अधिकरण ऐसी आपत्तियों पर विधि के अनुसार अपनी मैरिट के आधार पर निर्णय ले सकता है । लागत के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./क.

---

[1] (2013) 15 एस. सी. सी. 341.

[2] (2008) 1 एस. सी. सी. 125.

शिवनारायण गुप्ता

बनाम

व्यासनारायण गुप्ता और अन्य

(2006 की प्रथम अपील सं. 202)

तारीख 31 मार्च, 2021

न्यायमूर्ति संजय एस. अग्रवाल

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 96 [सपठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 2, 63 और 71] – अपील – संयुक्त कुटुम्ब सम्पत्ति की वसीयत – वसीयत सम्यक् रूप से साबित होना – तत्पश्चात् उक्त सम्पत्ति के विभाजन की मांग करना – यदि संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब सम्पत्ति में वसीयत द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त कर लिया जाता है और उसे सम्यक् रूप से साबित कर दिया जाता है तो तत्पश्चात् ऐसी सम्पत्ति के विभाजन की मांग नहीं की जा सकती है और इसके निमित्त वाद खारिज किए जाने योग्य होगा ।

वर्तमान मामले में, विभाजन और पृथक् कब्जे के लिए वादी शिवनारायण गुप्ता ने अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन करते हुए वाद फाइल किया है कि वादपत्र के अनुसूची-'ए' में वर्णित संपत्तियां जिला रायपुर के ग्राम आरंग एवं बैहर में स्थित है और जिला महासमुंद के ग्राम सारेकेल संयुक्त हिंदू कुटुंब कि संपत्ति हैं और उनका प्रबंधन उनके पिता मनराखन लाल गुप्ता द्वारा किया जा रहा था । वादी के अनुसार, उसके पिता ने वर्ष 1982-83 में स्वयं के नाम में अभिलिखित भूमि को अपनी पत्नी अनुसुइया बाई, अपने पुत्रों और उनकी पत्नियों को सौंप दिया तथा उनको कुटुंब के बेहतर प्रबंधन के लिए घर भी दिए गए थे और इसका अभिप्राय विभाजन किया जाना नहीं था । उक्त कुटुंब व्यवस्था के अनुसरण में, वादपत्र अनुसूची-'बी' में वर्णित संपत्तियां पिता के नाम पर राजस्व दस्तावेतों में अभिलिखित थी और तारीख 7 अक्तूबर, 1999 को उनका दुखद निधन हो जाने पर, संपूर्ण पैतृक

संपत्ति उनको और उनके विधिक उत्तराधिकारियों को सौंप (हस्तांतरित) दी गई थी । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – जहां तक श्री शर्मा की इस दलील का संबंध है कि वसीयत की अभिकथित विलेख पिता मनराखन लाल द्वारा अपने पुत्र कमलनारायण गुप्ता के पक्ष में निष्पादित किया जाना तात्पर्यित है जो सम्यक् रूप से निष्पादित नहीं थी, भी इसमें इसके पश्चात् बताए गए कारणों से खारिज किया जाना उल्लिखित है । यह सत्य है कि इसे अनुप्रमाणित करने वाले साक्षियों में से एक अर्थात् श्रीमती कमली बाई जो मनराखन लाल गुप्ता की सगी बहन है, ने अभिसाक्ष्य दिया है कि यद्यपि अभिकथित वसीयत में "डी" से "डी" स्थान पर उसके हस्ताक्षर हैं, किन्तु मनराखन लाल गुप्ता जो इसके निष्पादक हैं, ने उसकी उपस्थिति में हस्ताक्षर नहीं किए हैं और इसके ऊपर उसके हस्ताक्षर उक्त कमलनारायण गुप्ता द्वारा कराए गए हैं । तथापि, एक अन्य अनुप्रमाणन साक्षी अर्थात् किरण साहेब जो उक्त कमल नारायण गुप्ता के बहनोई हैं, ने अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने उक्त मनराखन लाल गुप्ता की अभिकथित वसीयत को पूरा पढ़ा है और उसने महासमुंद में लेखक की उपस्थिति में पहले से ही इसमें किए गए हस्ताक्षर को स्वीकार करते हुए, इसमें दो जगह पर पुन: अपने हस्ताक्षर किए और तत्पश्चात् उसने और उक्त कमली बाई ने उस पर हस्ताक्षर किए । उसके साक्ष्य का प्रतिपरीक्षा में खंडन किया जा सका था । शोभाराम श्रीवास अभिकथित वसीयत का लेखक है, जिसने निष्पादक मनराखन लाल गुप्ता के निर्देश पर महासमुंद में इसे तैयार किया, उनके अनुसार उक्त मनराखन लाल गुप्ता एक वसीयत "कच्चा मज़बून" के साथ अपने पुत्र कमलनारायण के साथ आए थे और उसके बाद उसने उनके निर्देश के अनुसार वसीयत तैयार की जिसने इसके प्रत्येक पृष्ठ पर अपने हस्ताक्षर किए । उनके अनुसार, वसीयत के निष्पादन के समय कोई साक्षी उपस्थित नहीं था, इसलिए, उसने उनको साक्षियों की उपस्थिति में पुन: अपने हस्ताक्षर करने का सुझाव दिया । उनके द्वारा आगे यह कथन किया गया है कि 2-3 दिन बाद वह अभिकथित वसीयत पर साक्षियों के हस्ताक्षर के साथ आए, जहां किरण साहेब का पता और

दूसरे साक्षी के पति का नाम अर्थात् श्रीमती कमली बाई और उसका पता उक्त दस्तावेज़ पर नहीं है, इसलिए, उनसे वही पूछने पर उन विवरणों का उल्लेख किया, जिसके बाद उन्होंने उक्त प्रासंगिक पृष्ठ पर अपने हस्ताक्षर किए । उसने आगे यह अभिवाक् किया कि मनराखन लाल गुप्ता ने उनके सामने वसीयत पर अपने फोटो को चिपका दिया जब वह द्वितीय बार आए थे । यद्यपि सत्यापित साक्षियों में से एक (श्रीमती कमली बाई) ने अभिकथित वसीयत के निष्पादन का समर्थन नहीं किया है लेकिन एक अन्य अनुप्रमाणक साक्षी और अभिकथित वसीयत के लेखक के कथन के मूल परिशीलन से, यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि इसका निष्पादन, प्रतिवादी कमलनारायण गुप्ता द्वारा होना सम्यक् रूप से सिद्ध होता है और उसको ध्यान में रखते हुए, श्री शर्मा का अवलंबित निर्णय, जैसा कि जानकी नारायण भोईर बनाम नारायण नामदेव कदम वाले मामले में निर्णय लिया है, वसीयत के प्रस्तावक अर्थात् कमलनारायण गुप्ता के कथन का ही समर्थन करते हैं । जैसा कि उक्त मामले में, अनुप्रमाणक साक्षियों में से एक की परीक्षा कराई थी किन्तु, वह वसीयत का सम्यक् निष्पादन साबित करने में विफल रहा है । भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 के खंड (ग) के अधीन विहित उपबंध के अनुसरण में, उसके चचेरे भाई के पुत्र के पक्ष में होनाजी दामा द्वारा वसीयत निष्पादित होना कहा गया है और यद्यपि अन्य अनुप्रमाणक साक्षी जो जीवित थे, उनकी वसीयत के सम्यक् निष्पादन के लिए परीक्षा नहीं कराई गई थी । इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यदि वसीयत के प्रमाणित साक्षियों में से एक की परीक्षा की गई है और वह इसके सम्यक् निष्पादन को साबित करने में विफल रहता है, तो इसे वसीयत के दूसरे प्रमाणित साक्षी की परीक्षा कराकर साबित किया जा सकता है । तत्काल मामले में, जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया है, यद्यपि वसीयत के प्रमाणित साक्षियों में से एक अर्थात् श्रीमती कमली बाई भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63(ग) के अधीन विहित उपबंध के अनुसार इसके सम्यक् निष्पादन को साबित करने में विफल रही है, तथापि, इसके दूसरे प्रमाणित साक्षी अर्थात्, किरण साहेब द्वारा विधिवत् रूप से साबित किया जाना पाया

गया था और इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने इसके सम्यक् निष्पादन और अनुप्रमाणन को कायम रखने में कोई अवैधता कारित नहीं की है । जहां तक घनश्याम और अन्य बनाम दीपक कुमार पटनायक और अन्य वाले मामले में इस समन्वय न्यायालय पीठ द्वारा अधिकथित किए सिद्धांतों का संबंध है, उसे वर्तमान में अंतर्वलित तथ्यों से पृथक् किया जाना अभिनिर्धारित किया है । जैसा कि उक्त मामले में, प्रमाणित करने वाले साक्षियों में से एक अर्थात् वसीयत के विजय शंकर की परीक्षा कराई थी, परन्तु वह इसके निष्पादन का साबित करने में असफल रहा जबकि दूसरा प्रमाणित साक्षी अर्थात् खेमराज जीवित था फिर भी उसे इसके सम्यक् निष्पादन के लिए नहीं बुलाया गया । श्री शर्मा ने राज कुमारी और अन्य बनाम सुरिंदर पाल शर्मा वाले मामले में निर्णय पर अवलंब लिया है । तथापि, उसमें अधिकथित सिद्धांत इसमें अंतर्वलित तथ्यों को लागू नहीं होते हैं, जैसा कि उक्त मामले में, प्रमाणित करने वाले साक्षी में से किसी को नहीं बुलाया गया है और इसलिए, वसीयत के निष्पादन को उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 71 के अधीन वर्णित उपबंध का अवलंब लेकर साबित नहीं किया जा सकता है । आगे विधिक प्रतिनिधियों और अन्य द्वारा विधिक प्रतिनिधियों बनाम के. एम. विराजे उर्स (मृतक) द्वारा एम. बी. रमेश वाले मामले में श्री शर्मा का लिया गया अवलंब भी वर्तमान मामले अंतर्वलित तथ्यों से भिन्न है और यह किसी उपयोग में नहीं आएगा । इसके अलावा, यहां यह मत व्यक्त किया जाना प्रासंगिक है कि अभिकथित वसीयत का न तो निष्पादन हुआ है और न ही वादी द्वारा इस पर वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर से इनकार किया गया है । वस्तुत:, इस पहलू में उनके द्वारा किया गया अभिवाक् यह है कि चूंकि उसके पिता उक्त भाई (कमलनारायण) के साथ रहते थे, इसलिए, इसका अनुचित लाभ उठाते हुए, उसने (कमलनारायण) जाली और कूटरचित वसीयत तैयार कर ली है, यही एकमात्र अभिवाक् है जो इसके अमान्यकरण के लिए फाइल की गई है । तथापि, इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए कि इसे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 4 के अधीन विहित उपबंध के अनुसार लिया जाना अपेक्षित था । तारीख 24 दिसंबर, 1998 की वसीयत का सम्यक्

निष्पादन, अनुप्रमाणन और वैधता को जाली या कूटरचित किया जाना अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है, जैसा कि वादी ने अधिकथित किया है, और न ही इसे किसी भी कल्पना के आधार पर अस्वीकार किया जा सकता है और इस प्रकार, कमलनारायण गुप्ता में इसमें उल्लिखित संपत्तियों के संबंध में अपनी हित अर्जित कर लिया था, सिवाय उस संपत्तियों के अर्थात् खसरा सं. 1923/3, 2655 और 2655/3 और 2939/2 का माप क्रमशः 0.226, 0.550, 0.311 और 0.069 हेक्टेयर भूमि है, जो उनके पिता मनराखन लाल गुप्ता के स्वामित्व वाली भूमि का भाग नहीं थे । (पैरा 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21 और 24)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2020]	(2020) 2 एम. पी. एल. जे. 55 (एस. सी.) : **राज कुमारी और अन्य** बनाम **सुरिंदर पाल शर्मा** ;	8, 20
[2019]	ए. आई. आर. 2019 एस. सी. 4822 : **गोविंदभाई छोटाभाई पटेल और अन्य** बनाम **पटेलरमनभाई माथुरभाई** ;	9, 23
[2013]	(2013) 7 एस. सी. सी. 490 : **एम. बी. रमेश (मृतक) के विधिक प्रतिनिधियों** बनाम **के. एम. वीराजे उर्स (मृतक) के विधिक प्रतिनिधियों और अन्य** ;	8, 20
[2005]	(2005) 2 एस. सी. सी. 784 : **श्रीदेवी और अन्य** बनाम **जयराजा शेट्टी और अन्य** ;	22
[2003]	द्वितीय अपील संख्या 710/2003 : **घनश्याम और अन्य** बनाम **दीपक कुमार पटनायक एवं अन्य** ;	8, 19
[2003]	(2003) 2 एस. सी. सी. 91 : **जानकी नारायण भोईर** बनाम **नारायण नामदेव कदम** ;	8, 17

[1985] 1985 एम. पी. डब्ल्यू. एन. 400 :
जनौती बाई बनाम **राजो बाई** ; 25

[1963] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1279 :
लाडली प्रसाद जयसवाल बनाम **द करनाल डिस्टिलरी कंपनी लिमिटेड करनाल और अन्य** । 9, 21

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2006 की प्रथम अपील सं. 202.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री रविन्द्र शर्मा और आशुतोष शुक्ला, अधिवक्ता
प्रत्यर्थियों सं. 1, 2 और 4क की ओर से	श्री सुमेश बजाज, अधिवक्ता
राज्य/प्रत्यर्थी सं. 5	श्री उद्धव शर्मा, सरकारी अधिवक्ता

न्यायमूर्ति संजय एस. अग्रवाल – इस अपील को वादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में 1908 की 'संहिता' कहा गया है) धारा 96 के अधीन 2004 की सिविल वाद सं. 44 में तारीख 31 अगस्त, 2006 को पारित निर्णय एवं डिक्री को चुनौती दी है जिसके द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय ने विभाजन और पृथक् कब्जे के लिए उसके दावे को खारिज कर दिया है । इस अपील के पक्षकारों को इसमें इसके पश्चात् निचले न्यायालय के समक्ष उनके विवरण के अनुसार निर्दिष्ट या जाएगा ।

2. जिसमें इस अपील के न्यायनिर्णय के लिए कथित किए जाने वाले आवश्यक तथ्य ये हैं कि विभाजन और पृथक् कब्जे के लिए वादी शिवनारायण गुप्ता ने अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन करते हुए वाद फाइल किया है कि वादपत्र के अनुसूची-'ए' में वर्णित संपत्तियां जिला रायपुर के ग्राम आरंग एवं बैहर में स्थित है और जिला महासमुंद के ग्राम सारेकेल संयुक्त हिंदू कुटुंब संपत्ति हैं और उनका प्रबंधन उनके पिता मनराखन लाल गुप्ता द्वारा किया जा रहा था । वादी के अनुसार, उसके पिता ने वर्ष 1982-83 में स्वयं के नाम में अभिलिखित भूमि को

अपनी पत्नी अनुसुइया बाई, अपने पुत्रों और उनकी पत्नियों को सौंप दिया तथा उनको कुटुंब के बेहतर प्रबंधन के लिए घर भी दिए गए थे और इसका अभिप्राय विभाजन किया जाना नहीं था । उक्त कुटुंब व्यवस्था के अनुसरण में, वादपत्र अनुसूची-'बी' में वर्णित संपत्तियां पिता के नाम पर राजस्व दस्तावेजों में अभिलिखित थीं और तारीख 7 अक्तूबर, 1999 को उनका दु:खद निधन हो जाने पर, संपूर्ण पैतृक संपत्ति उनको और उनके विधिक उत्तराधिकारियों को सौंप (हस्तांतरित) दी गई थी ।

3. वादी का पक्षकथन यह भी है कि उसका भाई कमलनारायण गुप्ता, प्रतिवादी सं. 3 जो अपने पिता के साथ रहता था, उसने एक कूटरचित और जाली वसीयत बनाई है, जिसकी बाबत कहा है कि इसे पिता ने तारीख 24 दिसंबर, 1998 को उसके पक्ष में निष्पादित किया था और तत्पश्चात्, वह राजस्व प्राधिकारियों से नामांतरण आदेश प्राप्त करके वारिस बन गया और इसलिए, उसमें अपना व्यक्तिगत हित स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है । इस प्रकार, वादी को वादपत्र अनुसूची-'ए' में वर्णित संपत्तियों पर 1/5वें हिस्से का दावा और/या वादपत्र अनुसूची-'बी' पर वैकल्पिक रूप से 1/6वें हिस्से का दावा करते हुए तत्काल प्रकृति में वाद फाइल करने के लिए बाध्य होना पड़ा, जो उनके पिता के नाम पर अभिलिखित है ।

4. वादी का पूर्वोक्त दावा प्रतिवादियों सं. 1 और 2 अर्थात् वादी के भाई व्यासनारायण और जयनारायण द्वारा स्वीकृत कर लिया गया है, जबकि उनके दूसरे भाई कमलनारायण (प्रतिवादी सं. 3) और माता श्रीमती अनुसुइया बाई (प्रतिवादी सं. 4) ने अन्य बातों के साथ-साथ यह निवेदन करते हुए दावे का विरोध किया है कि वादपत्र अनुसूची-'ए' में यथावर्णित प्रश्नगत संपत्तियां का उक्त मनराखन लाल गुप्ता के जीवनकाल के दौरान वर्ष 1978-79 में पहले ही विभाजन हो गया और तत्पश्चात्, 1982-83 के राजस्व दस्तावेजों में नामांतरण कर दिया गया था, जिसमें वादपत्र अनुसूची-'बी' संपत्ति पिता मनराखन लाल के नाम पर थी । इस आधार पर, यह दलील दी गई है कि वसीयत का कथित विलेख तारीख 24 दिसंबर, 1998 को पिता मनराखन लाल गुप्ता द्वारा विधिवत् रूप से निष्पादित कर दी गई थी, इसके आधार पर, तहसीलदार, आरंग द्वारा

तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को पारित आदेश अनुसार, राजस्व दस्तावेजों में उसका (कमलनारायण) नाम अभिलिखित किया गया था ।

5. श्रीमती कुसुम गुप्ता (प्रतिवादी सं. 4ए), जो वादी की बहन है, ने इस आधार पर यह दलील दी है कि प्रश्नगत संपत्ति का पहले ही पिता के जीवनकाल में बंटवारा हो गया था और उसके अनुसरण में, 1982-83 के राजस्व दस्तावेजों में उनके नाम पर नामांतरण भी किए गए थे । उसके अनुसार, वादी ने, वाद फाइल करते समय, घर अर्थात् उसके पिता द्वारा स्वामित्व रायपुर के स्टेशन मार्ग के नारदपारा में स्थित मकान सं. 13/10 के विवरण को प्रकट नहीं किया है और उसने आगे अभिवाक् किया कि एक बेटी होने के नाते, वह अपने पिता द्वारा छोड़ी गई संपत्तियों पर 1/6वें अंश के बराबर हित अर्जित कर लिया है ।

6. समर्थन में, वादी ने अभिकथित वसीयत के साक्षियों का सत्यापन करते हुए, स्वयं और अपनी बुआ श्रीमती कमली बाई की परीक्षा कराई है, जबकि प्रतिवादी सं. 3 कमलनारायण ने स्वयं, माता श्रीमती अनुसुइया बाई और अनुप्रमाणन साक्षी किरण साहेब (अपनी पत्नी के भाई) और अभिकथित वसीयत के लेखक (शोभाराम) की परीक्षा कराई है ।

7. पक्षकारों द्वारा अवलंब लिए गए साक्ष्यों पर विचार करने के बाद, दस्तावेजी साक्ष्य प्रदर्श डी-1 से प्रदर्श डी-9 पर अपना अवलंब लेते हुए विचारण न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वादपत्र अनुसूची-'ए' में वर्णित पक्षकारों के स्वामित्व वाली पैतृक संपत्तियों का वर्ष 1978-79 में पिता मनराखन लाल गुप्ता के जीवनकाल में ही विभाजन कर दिया गया है जिसमें वादपत्र अनुसूची 'बी' में वर्णित सम्पत्तियां पिता के हिस्से में आई थीं और तद्नुसार, राजस्व दस्तावेजों में उनके व्यक्तिगत नामों में नामांतरित किए थे । यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि अभिकथित वसीयत को सत्यापित करने वालों साक्षियों में से एक अर्थात्, श्रीमती कमली बाई ने इसके निष्पादन का समर्थन नहीं किया है परन्तु दूसरे साक्षी अर्थात् किरण साहेब और इसके लेखक ने निष्पादन, सत्यापन और अभिकथित वसीयत की विधिमान्यता कायम रखी है । यह भी मत व्यक्त किया है कि खसरा सं. 1923/3, 2655 और 2655/3 और 2939/2 वाली संपत्तियां

मापी गई क्रमशः 0.226, 0.550, 0.311 और 0.069 हेक्टेयर क्षेत्रफल भूमि अभिकथित वसीयत का हिस्सा नहीं थीं, इसलिए, पिता मनराखन लाल गुप्ता के विधिक उत्तराधिकारी उसमें से 1/6 हिस्सा पाने के हकदार होंगे और चूंकि मकान सं. 13/10 वाला मकान जो कि रायपुर स्टेशन रोड नारदपारा में स्थित है, वाद संपत्तियों में सम्मिलित नहीं थी, इसलिए, आंशिक विभाजन की ईप्सा करने वाले वादी द्वारा किया गया दावा खारिज किए जाने योग्य है और इसको ध्यान में रखते हुए, दावे को खारिज कर दिया । यही आदेश है, जिसको इस अपील के माध्यम से प्रश्न किया गया है ।

8. अपीलार्थी/वादी की ओर से उपस्थित हुए, विद्वान् काउंसेल श्री रवीन्द्र शर्मा ने दलील दी है कि विचारण न्यायालय के निष्कर्ष में वर्ष 1978-79 में संपन्न हुए विभाजन के तथ्यों को कायम रखना और अभिकथित वसीयत (प्रदर्श पी-28ग) के निष्पादन को कायम रखना स्पष्ट रूप से विधि के विपरीत है । उनके अनुसार, कुटुंब के प्रधान होने के नाते मनराखन लाल गुप्ता ने विभाजन को प्रभावित करने के इरादे के बिना संयुक्त कुटुंब की संपत्तियों के बेहतर प्रबंधन के लिए ही कथित व्यवस्था की है । अभिकथित वसीयत की साक्षी अर्थात् श्रीमती कमली बाई (अभि. सा.) का सत्यापन करते समय किए गए कथन की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए, यह भी दलील दी है कि चूंकि अभिकथित वसीयत के निष्पादक ने उसकी उपस्थिति में उक्त दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं, इसलिए, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि यह निष्पादन को, उक्त वसीयत के निष्पादन अर्थात् प्रतिवादी सं. 3 कमलनारायण गुप्ता द्वारा विधि के अनुसरण में, स्पष्ट रूप से साबित कर दिया था और तारीख 8 मार्च, 2019 को इस न्यायालय की समन्वय खंडपीठ द्वारा विनिश्चित क्रमशः किए गए **जानकी नारायण भोईर** बनाम **नारायण नामदेव कदम**[1]**, एम. बी. रमेश (मृतक) के विधिक प्रतिनिधियों** बनाम **के. एम. वीराजे उर्स (मृतक) के विधिक प्रतिनिधियों और अन्य**[2]**, राज कुमारी और अन्य** बनाम **सुरिंदर पाल शर्मा**[3] और **घनश्याम और**

---

[1] (2003) 2 एस. सी. सी. 91.

[2] (2013) 7 एस. सी. सी. 490.

[3] (2020) 2 एम. पी. एल. जे. 55 (एस. सी.).

अन्य बनाम **दीपक कुमार पटनायक और अन्य**[1] वाले मामलों का अवलंब लिया गया है ।

9. उपरोक्त दलीलों का विरोध करते हुए, प्रतिवादी सं. 3 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री सुमेश बजाज ने यह दलील दी है कि दस्तावेजी साक्ष्य, जैसे प्रदर्श डी-1 से प्रदर्श डी-9 को ध्यान में रखते हुए, यह प्रकट होता है कि पैतृक संपत्तियों का विभाजन वर्ष 1978-79 में पहले से ही संपन्न हो चुका था और इसके अनुसरण में, राजस्व अभिलेख वर्ष 1982-83 में विधिवत् रूप से नामांतरित हो गए थे । साक्षी किरण साहेब (प्रति. सा. 3) और अभिकथित वसीयत के लेखक शोभाराम (प्रति. सा. 4) द्वारा सत्यापित करते समय किए गए कथन की ओर पर ध्यान आकर्षित करते हुए यह उनके द्वारा यह भी दलील दी गई है कि विचारण न्यायालय द्वारा अभिकथित वसीयत की अनुप्रमाणिकता को ठीक ही कायम रखा गया है । आगे यह दलील दी है कि चूंकि वादी ने कपट असम्यक् प्रभाव के आधार पर अभिकथित वसीयत की अनुप्रमाणिकता को प्रश्नगत किया है और इसलिए, इसे साबित करने का भार उसी पर है और उन्होंने उच्चतम न्यायालय द्वारा **लाडली प्रसाद जयसवाल** बनाम **द करनाल डिस्टिलरी कंपनी लिमिटेड करनाल और अन्य**[2] और **गोविंदभाई छोटाभाई पटेल और अन्य** बनाम **पटेल रमनभाई मथुरभाई**[3] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों का अलवंब लिया है ।

10. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और संपूर्ण अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया ।

11. इस अपील में अवधारण के लिए जो प्रश्न उद्भूत हुए हैं वे इस प्रकार हैं :–

> "(i) क्या विचारण न्यायालय द्वारा वादपत्र की अनुसूची 'ए' में वर्णित पैतृक संपत्तियों का वर्ष 1978-79 में विभाजन होना अभिनिर्धारित करना सही था ?

---

[1] द्वितीय अपील संख्या 710/2003.

[2] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1279.

[3] ए. आई. आर. 2019 एस. सी. 4822.

(ii) क्या विचारण न्यायालय द्वारा पिता मनराखन लाल द्वारा अपने पुत्र कमलनारायण गुप्ता के पक्ष में निष्पादित तारीख 24 दिसंबर, 1998 (प्रदर्श पी-28 सी) की वसीयत विलेख का सम्यक् निष्पादन, परिवर्तन और विधिमान्य होना सही ही अभिनिर्धारित किया गया था ?

(iii) क्या विचारण न्यायालय, वादी के दावे को खारिज करने में न्यायानुमत था यह अभिनिर्धारित करते हुए कि आंशिक विभाजन विधि के अधीन अनुज्ञेय नहीं है ?"

प्रश्न सं. (i) का अवधारण –

12. वादपत्र अनुसूची-'ए' में वर्णित वाद संपत्तियां निर्विवाद रूप से पक्षकारों की पैतृक संपत्ति थी । वादी के अनुसार, पिता मनराखन लाल गुप्ता ने उक्त संयुक्त कुटुंब संपत्ति की बेहतरी के लिए वर्ष 1982-83 में एक व्यवस्था की थी । तथापि, इसका प्रतिवादी सं. 3 माता श्रीमती अनुसुइया बाई एवं बहन श्रीमती कुसुम गुप्ता ने खंडन किया था । उनके अनुसार, कथित वाद संपत्तियों का विभाजन वर्ष 1978-79 में मनराखन लाल गुप्ता के जीवनकाल के दौरान पहले ही हो चुका था और तद्नुसार, राजस्व अभिलेख वर्ष 1982-83 में नामांतरण किया गया था ।

13. प्रदर्श डी-1 पक्षकारों द्वारा वादी शिवनारायण गुप्ता सहित संयुक्त रूप से आवेदन अनुप्रमाणन अधिकारी, आरंग के समक्ष फाइल किया गया । तारीख 14 जून, 1982 को प्रस्तुत किए गए उक्त आवेदन (प्रदर्श डी 1) का परिशीलन करने से ही यह दर्शित हो जाएगा कि विभाजन उनके पिता के जीवनकाल के दौरान वर्ष 1978-79 में संपन्न हो चुका था और वे तब से कब्ज़े में हैं, और इसलिए, उन्होंने राजस्व दस्तावेजों में अपने नामों को अभिलिखत करने की प्रार्थना की थी । यह भी प्रकट होता है कि वर्ष 1978-79 में हुए कथित विभाजन का विवरण उक्त आवेदन के साथ भी संलग्न किया गया था जिसे प्रदर्श डी-2सी से प्रदर्श डी-7सी और प्रदर्श डी-9सी के रूप में चिह्नित किया था और उसी प्रकार, तारीख 29 फरवरी, 1982 को उनके पिता एवं उनके सभी पुत्रों द्वारा संयुक्त रूप से प्रस्तुत किए गए आवेदन प्रदर्श डी-सी से भी यह

तथ्य दृष्टिगत होता है । इसके अतिरिक्त, वादी की आंटी (बुआ) अर्थात् श्रीमती कमली बाई (अभि. सा. 2) ने भी अपने साक्ष्य में विभाजन के अभिकथित तथ्य को स्वीकृत किया है । पक्षकरों की विशिष्ट स्वीकृति को ध्यान में रखते हुए, दस्तावेजी साक्ष्यों (प्रदर्श डी-1सी से डी-9सी) से प्रतिबिंबित रूप से यह प्रकट होता है कि वादपत्र अनुसूची 'ए' में वर्णित की गई अभिकथित पैतृक संपत्तियां का वर्ष 1978-79 में विभाजन हुआ था और तद्नुसार, उसके अनुसरण में, वर्ष 1982-83 में उनके नाम अभिलिखित किए थे और वादपत्र अनुसूची 'बी' में दर्शाई गई वाद संपत्तियां पिता मनराखन लाल गुप्ता के हिस्से में आई थीं । उक्त पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए, मुझे इस संबंध में विचारण न्यायालय के निष्कर्ष में कोई त्रुटि नजर नहीं आती है ।

प्रश्न सं. (ii) का अवधारण –

14. अब, जहां तक श्री शर्मा की इस दलील का संबंध है कि वसीयत (प्रदर्श पी-28सी) की अभिकथित विलेख पिता मनराखन लाल द्वारा अपने पुत्र कमलनारायण गुप्ता के पक्ष में निष्पादित किया जाना तात्पर्यित है जो सम्यक् रूप से निष्पादित नहीं थी, भी इसमें इसके पश्चात् बताए गए कारणों से खारिज किया जाना उल्लिखित है ।

15. यह सत्य है कि इसे अनुप्रमाणित करने वाले साक्षियों में से एक अर्थात् श्रीमती कमली बाई (अभि. सा. 2) जो मनराखन लाल गुप्ता की सगी बहन है, ने अभिसाक्ष्य दिया है कि यद्यपि अभिकथित वसीयत में 'डी' से 'डी' स्थान पर उसके हस्ताक्षर हैं, किन्तु मनराखन लाल गुप्ता जो इसके निष्पादक हैं, ने उसकी उपस्थिति में हस्ताक्षर नहीं किए हैं और इसके ऊपर उसके हस्ताक्षर उक्त कमलनारायण गुप्ता द्वारा कराए गए हैं । तथापि, एक अन्य अनुप्रमाणन साक्षी अर्थात् किरण साहेब (प्रति. सा. 3) जो उक्त कमलनारायण गुप्ता के बहनोई हैं, ने अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने उक्त मनराखन लाल गुप्ता की अभिकथित वसीयत को पूरा पढ़ा है और उसने महासमुंद में लेखक की उपस्थिति में पहले से ही इसमें किए गए हस्ताक्षर को स्वीकार करते हुए, इसमें दो जगह पर पुन: अपने हस्ताक्षर किए और तत्पश्चात् उसने और उक्त कमली बाई ने

उस पर हस्ताक्षर किए । उसके साक्ष्य का प्रतिपरीक्षा में खंडन किया जा सका था ।

16. शोभाराम श्रीवास (प्रति. सा. 3) अभिकथित वसीयत का लेखक है, जिसने निष्पादक मनराखन लाल गुप्ता के निर्देश पर महासमुंद में इसे तैयार किया, उनके अनुसार उक्त मनराखन लाल गुप्ता एक वसीयत "कच्चा मज़बून" (एक प्रकार का कच्चा विवरण) के साथ अपने पुत्र कमलनारायण के साथ आए थे और उसके बाद उसने उनके निर्देश के अनुसार वसीयत तैयार की जिसने इसके प्रत्येक पृष्ठ पर अपने हस्ताक्षर किए । उनके अनुसार, वसीयत के निष्पादन के समय कोई साक्षी उपस्थित नहीं था, इसलिए, उसने उनको साक्षियों की उपस्थिति में पुन: अपने हस्ताक्षर करने का सुझाव दिया । उनके द्वारा आगे यह कथन किया गया है कि 2-3 दिन बाद वह अभिकथित वसीयत पर साक्षियों के हस्ताक्षर के साथ आए, जहां किरण साहेब का पता और दूसरे साक्षी के पति का नाम अर्थात् श्रीमती कमली बाई और उसका पता उक्त दस्तावेज़ पर नहीं है, इसलिए, उसने (मनराखन लाल गुप्ता) से वही पूछने पर उन विवरणों का उल्लेख किया, जिसके बाद उन्होंने उक्त प्रासंगिक पृष्ठ पर अपने हस्ताक्षर किए । उसने आगे यह अभिवाक् किया कि वह (मनराखन लाल गुप्ता) ने उनके सामने वसीयत पर अपने फोटो को चिपका दिया जब वह द्वितीय बार आए थे ।

17. इस प्रकार, उपरोक्त अभिकथनों से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि सत्यापित साक्षियों में से एक (श्रीमती कमली बाई) ने अभिकथित वसीयत के निष्पादन का समर्थन नहीं किया है लेकिन एक अन्य अनुप्रमाणक साक्षी और अभिकथित वसीयत के लेखक के कथन के मूल परिशीलन से, यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि इसका निष्पादन, प्रतिवादी कमलनारायण गुप्ता द्वारा होना सम्यक् रूप से सिद्ध होता है और उसको ध्यान में रखते हुए, श्री शर्मा का अवलंबित निर्णय, जैसा कि **जानकी नारायण भोईर** बनाम **नारायण नामदेव कदम** (उपरोक्त) वाले मामले में निर्णय लिया है, वसीयत के प्रस्तावक अर्थात् कमलनारायण गुप्ता के कथन का ही समर्थन करते हैं । जैसा कि उक्त

मामले में, अनुप्रमाणक साक्षियों में से एक की परीक्षा कराई थी किन्तु, वह वसीयत का सम्यक् निष्पादन साबित करने में विफल रहा है । भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 के खंड (ग) के अधीन विहित उपबंध के अनुसरण में, उसके चचेरे भाई के पुत्र के पक्ष में होनाजी दामा द्वारा वसीयत निष्पादित होना कहा गया है और यद्यपि अन्य अनुप्रमाणक साक्षी जो जीवित थे, उनकी वसीयत के सम्यक् निष्पादन के लिए परीक्षा नहीं कराई गई थी । इस तथ्यात्मक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए, इसके पैरा 10 और 12 में व्यक्त मत इस प्रकार है :–

> "10. जहां साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 की वसीयत साबित करने से प्रमाणित साक्षी की गई परीक्षा में वसीयत के सम्यक् निष्पादन को साबित करने में विफल रहता है तो अन्य उपलब्ध प्रमाणित साक्षियों को सभी पहलुओं में संपूर्ण करने के लिए उसके साक्ष्य को अनुपूरक करने ले लिए बुलाना होगा....."
>
> *** *** ***
>
> "12. वर्तमान मामले के तथ्यों को उलटते हुए यह स्पष्ट होता है कि केवल एक ही प्रमाणित साक्षी प्रभाकर सिंकर की मामले में परीक्षा वसीयत के निष्पादन को साबित करने के लिए नहीं कराई थी क्योंकि उसने अन्य प्रमाणित साक्षी वागले द्वारा वसीयत के सत्यापन को साबित नहीं किया था जिसमें यद्यपि वह उपलब्ध परीक्षा में नहीं था ....। सिंकर के साक्ष्य, एकमात्र प्रमाणित साक्षी साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 को आदेशात्मक अपेक्षाओं से संतुष्ट नहीं होता है । हम प्रत्यर्थी की ओर से दी गई दलील को स्वीकृत करने की स्थिति में नहीं हैं कि अन्य साक्षी के साक्ष्य अर्थात् उसके प्रत्यर्थी और लेखक पर साक्ष्य अधिनियम की धारा 71 के अधीन विचार किया जा सकता है । जब धारा 71 को प्रमाणित करने वाले साक्षी के पास कोई आवेदन नहीं है, जिसे समन भेजा गया है और वह वसीयत के निष्पादन को साबित करने में असफल रहा है और अन्य प्रमाणित करने वाला साक्षी में उपलब्ध नहीं हो पाया है । यह

धारा कोई आवेदन नहीं है जब एक प्रमाणित करने वाला वसीयत के निष्पादन को साबित करने में विफल रहा हो और अन्य प्रमाणित करने वाले साक्षी उपलब्ध थे यदि उनको बुलाया जाता तो निष्पादन को साबित कर सकते थे ।"

18. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यदि वसीयत के प्रमाणित साक्षियों में से एक की परीक्षा की गई है और वह इसके सम्यक् निष्पादन को साबित करने में विफल रहता है, तो इसे वसीयत के दूसरे प्रमाणित साक्षी की परीक्षा कराकर साबित किया जा सकता है । तत्काल मामले में, जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया है, यद्यपि वसीयत (प्रदर्श पी-28सी) के प्रमाणित साक्षियों में से एक अर्थात् श्रीमती कमली बाई (अभि. सा. 2) भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63(ग) के अधीन विहित उपबंध के अनुसार इसके सम्यक् निष्पादन को साबित करने में विफल रही है, तथापि, इसके दूसरे प्रमाणित साक्षी अर्थात्, किरण साहेब (प्रति. सा. 3) द्वारा विधिवत् रूप से साबित किया जाना पाया गया था और इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने इसके सम्यक् निष्पादन और अनुप्रमाणन को कायम रखने में कोई अवैधता कारित नहीं की है ।

19. जहां तक **घनश्याम और अन्य** बनाम **दीपक कुमार पटनायक और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में इस समन्वय न्यायालय पीठ द्वारा अधिकथित सिद्धांतों का संबंध है, उसे वर्तमान में अंतर्वलित तथ्यों से पृथक् किया जाना अभिनिर्धारित किया है । जैसा कि उक्त मामले में, प्रमाणित करने वाले साक्षियों में से एक अर्थात् वसीयत के विजय शंकर की परीक्षा कराई थी, परन्तु वह इसके निष्पादन को साबित करने में असफल रहा जबकि दूसरा प्रमाणित साक्षी अर्थात् खेमराज जीवित था फिर भी उसे इसके सम्यक् निष्पादन के लिए नहीं बुलाया गया ।

20. श्री शर्मा ने **राज कुमारी और अन्य** बनाम **सुरिंदर पाल शर्मा** (उपरोक्त) वाले मामले में निर्णय पर अवलंब लिया है । तथापि, उसमें अधिकथित सिद्धांत इसमें अंतर्वलित तथ्यों को लागू नहीं होते हैं, जैसा कि उक्त मामले में, प्रमाणित करने वाले साक्षी में से किसी को नहीं बुलाया गया है और इसलिए, वसीयत के निष्पादन को उत्तराधिकार

अधिनियम की धारा 71 के अधीन वर्णित उपबंध का अवलंब लेकर साबित नहीं किया जा सकता है । श्री शर्मा ने **एम. बी. रमेश विधिक प्रतिनिधियों** बनाम **के. एम. विराजे उर्स (मृतक) के विधिक प्रतिनिधियों और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामलों का भी अवलंब लिया है जो वर्तमान मामले में अंतर्वलित तथ्यों से भिन्न है और यह किसी भी तरह से इस मामले में लागू नहीं होते हैं ।

21. इसके अलावा, यहां यह मत व्यक्त किया जाना प्रासंगिक है कि अभिकथित वसीयत का न तो निष्पादन हुआ है और न ही वादी द्वारा इसपर वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर से इनकार किया गया है । वस्तुतः, इस पहलू में उनके द्वारा किया गया अभिवाक् यह है कि चूंकि उसके पिता उक्त भाई (कमलनारायण) के साथ रहते थे, इसलिए, इसका अनुचित लाभ उठाते हुए, उसने (कमलनारायण) जाली और कूटरचित वसीयत तैयार कर ली है, यही एकमात्र अभिवाक् है जो इसके अमान्यकरण के लिए फाइल की गई है । तथापि, इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए कि इसे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 4 के अधीन विहित उपबंध के अनुसार लिया जाना अपेक्षित था । जबकि इसमें उक्त प्रावधान का निर्वचन करते हुए **लाडली प्रसाद जयसवाल** बनाम **द करनाल डिस्टिलरी कंपनी लिमिटेड करनाल और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने पैरा 20 में यह मत व्यक्त किया है जो निम्नानुसार हैं :–

> "20. सिविल प्रक्रिया संहिता, आदेश 6, नियम 4 यह उपबंध करता है कि सभी मामलों में जिनमें पक्षकार किसी मिथ्या निरूपण, कपट, विश्वास का उल्लंघन, जानबूझकर चूक या अनुचित प्रभाव और अन्य सभी मामलों में अवलंब लेकर अभिवाक् करता है जिसमें विवरण आवश्यकता से परे हो सकते हैं जैसा कि परिशिष्ट के प्रपत्रों में उदाहरण दिया गया है, विवरण (यदि आवश्यक हो तो तारीखों और मदों के साथ) अभिवाक् में कथित किया जाएगा । नियम का कारण स्पष्ट है । यह अभिवाक् कि संव्यवहार दूषित है उसके अन्य पक्षकार के असम्यक् प्रभाव के कारण जिससे मात्र यह सूचना होती है कि प्रभाव के एक या अन्य प्ररूप हो सकते हैं जिसे

असम्यक् प्रभाव का अभिवाक् लेने वाले पक्षकार को सहना पड़ता है । लेकिन अभिवाक् का उद्देश्य विवादित मामले पर उनका ध्यान केन्द्रित करके विचारण के लिए पक्षकारों को एक स्थिति में लाना है ताकि इसे विवाद्यकों तक सीमित किया जा सके और उनके संबंधित मामलों का समर्थन में पक्षकारों को नोटिस देना । एक अस्पष्ट या सामान्य अभिवाक् कभी भी इस प्रयोजन की सहायता नहीं कर सकती है; इस प्रकार पक्षकार को अभिवचन प्रयुक्त प्रभाव का यथार्थ अभिवाक्, प्रभाव के प्रयोग की रीति और अन्य द्वारा प्राप्त अनुचित लाभ के लिए अपेक्षित होना चाहिए । इस नियम में विवाद्यक को संकीर्ण करने की दृष्टि से विकसित किया गया है और आश्चर्य द्वारा लिए जाने से अनुचित आचरण के साथ अधिरोपित किए गए पक्षकार का संरक्षण करता है । अनुचित प्रभाव का अभिवाक् उस दोहरे प्रयोजन, यथार्थ की सहायता करने के लिए होना चाहिए और अभिवाक् के समर्थन में सभी आवश्यक विशिष्ट विवरण अभिवचन में समाविष्ट किया जाना चाहिए; यदि अभिवचन में कथित विवरण पर्याप्त नहीं हैं और विशिष्ट न्यायालय के समक्ष वाद के विचारण के साथ कार्यवाही होना चाहिए, विवरण पर आग्रह करना जो स्थापित करने के लिए आशयित मामले के अन्य पक्ष को नोटिस देना पर्याप्त है ।"

22. उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित किए गए पूर्वोक्त सिद्धांतों के प्रकाश में और विशिष्ट अभिवाक् के अभाव में, यह नहीं कहा जा सकता है कि अभिकथित वसीयत (प्रदर्श पी-28ग) वादी द्वारा कथित रूप से कपट करके अपने पिता से उक्त कमलनारायण गुप्ता द्वारा प्राप्त की गई है । इसके अतिरिक्त, उसे साबित करने का भार वादी पर था कि अनुचित लाभ लेकर, उसने इसे इस प्रकार तैयार किया । तथापि, इसे न तो उसको उक्त साक्षी श्रीमती कमली बाई द्वारा कथित किया गया था और न ही उनके द्वारा । इसके अलावा, मुझे कोई अकाट्य साक्ष्य नहीं मिलता है और उनके द्वारा लिया गया अवलंब यह अभिनिर्धारित करने के लिए है कि अभिकथित वसीयत कूटरचित दस्तावेज था या किसी प्रकार के अनुचित लाभ लेकर प्रतिवादी

कमलनारायण द्वारा तैयार करके प्राप्त की गई है । इस अवसर पर, **श्रीदेवी और अन्य** बनाम **जयराजा शेट्टी और अन्य**[1] वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों को इसमें देखा जाना चाहिए, जिसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा पैरा 11 में यह मत व्यक्त किया गया है, जो इस प्रकार है :–

> "11.....कथित अनुचित प्रभाव, कपट या जबरदस्ती, वसीयत का विरोध करने वाले व्यक्ति के मामले में उसे साबित करने का भार उन पर होगा । क्या संदिग्ध परिस्थितियों को तथ्यों के आधार पर और प्रत्येक विशिष्ट मामले की परिस्थितियों को आंकना होगा । ....."

23. अभी तक, **गोविंदभाई छोटाभाई पटेल और अन्य** बनाम **पटेलरमनभाई माथुरभाई** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पैरा 14 में ऐसी परिस्थितियों के अधीन यह अभिनिर्धारित किया गया है, जो इस प्रकार है :–

> "41. वर्तमान मामलों के तथ्य, तथ्यों के सदृश है जो कन्नन नांबियार में केरल उच्च न्यायालय के समक्ष रखे गए थे । अपीलार्थियों ने दस्तावेज़ के निष्पादन से इनकार नहीं किया है लेकिन कथित जालसाजी और कूटरचना की है । कोई भी जालसाजी और कूटरचना के किसी भी साक्ष्य के अभाव में और कन्नम नांबियार में अभिनिर्धारित रीति में उपहार विलेख के निष्पादन के विशिष्ट इनकार के अभाव में, आदाता उपहार विलेख के प्रमाणित साक्षियों में से किसी एक की परीक्षा दायित्वाधीन नहीं था । अभिलेख के साक्ष्य के अनुसार, आदाता बहुत वर्षों से दाता की देखभाल कर रहा था । अपीलार्थी संयुक्त राज्य अमेरिका में निवास कर रहा था लेकिन अपने माता-पिता की देखभाल करने में विफल रहा । इस प्रकार, अपीलार्थियों के पिता ने उस व्यक्ति के पक्ष में उपहार विलेख निष्पादित किया है जिसने उसकी देखभाल की थी । हम यह पाते हैं कि इसमें उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों में कोई त्रुटि नहीं है ।"

---

[1] (2005) 2 एस. सी. सी. 784.

24. उपरोक्त चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए और उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांतों के आलोक में, तारीख 24 दिसंबर, 1998 (प्रदर्श पी-28ग) की वसीयत का सम्यक् निष्पादन, अनुप्रमाणन और वैधता को जाली या कूटरचित किया जाना अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है, जैसा कि वादी ने अधिकथित किया है, और न ही इसे किसी भी कल्पना के आधार पर अस्वीकार किया जा सकता है और इस प्रकार, प्रतिवादी सं. 3 (कमल नारायण गुप्ता) में इसमें उल्लिखित संपत्तियों के संबंध में अपनी हित अर्जित कर लिया था, सिवाय उस संपत्तियों के अर्थात् खसरा सं. 1923/3, 2655 और 2655/3 और 2939/2 का माप क्रमशः 0.226, 0.550, 0.311 और 0.069 हेक्टेयर भूमि है, जो उनके पिता मनराखन लाल गुप्ता के स्वामित्व वाली भूमि का भाग नहीं थे ।

प्रश्न सं. (iii) का अवधारण –

25. स्वीकृत है कि नर्मदा पारा, स्टेशन रोड, रायपुर में स्थित मकान नंबर 13/10 वाला एक घर के मालिक पिता मनराखन लाल गुप्ता के स्वामित्व में पाया गया, फिर भी इसे वाद में सम्मिलित नहीं किया गया है । उसे दृष्टिगत करते हुए, विचारण न्यायालय ने **जनौती बाई** बनाम **राजो बाई**[1] वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों के आधार पर सही निष्कर्ष निकाला कि आंशिक विभाजन अनुज्ञेय नहीं है और मैं इसमें कोई अवगुण नहीं पाता हूं ।

26. परिणामस्वरूप, अपील बल रहित होने के कारण इसे खारिज किया जाता है । लागत के लिए कोई आदेश नहीं दिया जाता है ।

27. तद्नुसार, एक डिक्री तैयार की जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मही./क.

---

[1] 1985 एम. पी. डब्ल्यू. एन. 400.

श्रीपाल मेशराम

बनाम

उर्मिला मेशराम

(2018 की एफ. ए. एम. सं. 17)

तारीख 3 सितम्बर, 2021

कार्यवाहक मुख्य न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार मिश्रा

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) – धारा 19(1) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 18 का नियम 4 और हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13] – क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की ईप्सा करना – विवाह असुधार्य स्तर पर नहीं पहुंचना – विरोधी पक्षकार के आचरण, कृत्य, परिस्थितियों इत्यादि द्वारा क्रूरता साबित नहीं होना – विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने से इनकार करना – यदि विधिक तौर पर विवाहित पति/पत्नी, क्रूरता के आधार पर दूसरे के विरुद्ध विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने की ईप्सा करते हैं तो उन्हें अभिलेख पर यह साबित करना होगा कि दूसरे पक्षकार की क्रूरता के कारण उनके बीच विवाह असुधार्य स्तर पर पहुंच चुका है और क्रूरता को भी स्पष्ट रूप से साबित करना होगा, अन्यथा जीवन के दिन-प्रतिदिन टूट-फूट के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर नहीं की जा सकती है ।

वर्तमान मामले में, कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19(1) के अधीन अपीलार्थी/पति द्वारा फाइल इस अपील में कुटुंब न्यायालय, राजनंदगांव द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को प्रश्नगत किया गया है, जिसमें पक्षकारों के बीच विवाह का विघटन करने से इनकार कर दिया गया था । सिविल वाद सं. 72-ख/2011 में इससे पूर्व कुटुंब न्यायालय, राजनंदगांव द्वारा तारीख 27 अक्तूबर, 2014 को पारित निर्णय और डिक्री द्वारा पक्षकारों के बीच विवाह को विघटित करने वाले पति (इसमें अपीलार्थी) के वाद को मंजूर कर लिया गया था ।

तथापि, पत्नी (इसमें प्रत्यर्थी) द्वारा प्रस्तुत 2014 की एफएएम सं. 112 में निर्णय और डिक्री को इस न्यायालय द्वारा तारीख 7 जुलाई, 2017 के निर्णय के माध्यम से अपास्त कर दिया गया था और मामले में नवीन निर्णय देने के लिए विचारण न्यायालय को वापस भेज दिया था । प्रतिप्रेषण आदेश इस कारण से दिया गया था क्योंकि पूर्व के अवसर पर विचारण न्यायालय ने केवल सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 आदेश 18 नियम 4 के अधीन शपथपत्र में दिए गए साक्षियों के सभी कथनों को उद्धृत किया था और बिना किसी चर्चा या साक्ष्य का मूल्यांकन किए बिना ही क्रूरता के संबंध में निष्कर्ष अभिलिखित किए थे । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विवाह-विच्छेद की डिक्री, क्रूरता के आधार पर प्रदान की जा सकती है, तथापि, 'क्रूरता' शब्द को अधिनियम, 1955 के अधीन परिभाषित नहीं किया गया है, इसलिए, विवाह के पक्षकार का कौन-सा कार्य या लोप, आचरण या व्यवहार क्रूरता का गठन करेगा, इस प्रश्न को प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में समझा जाना चाहिए । यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि मानसिक क्रूरता एक दूसरे के प्रति पति या पत्नी का आचरण है जो एक-दूसरे के प्रति पति या पत्नी के वैवाहिक जीवन के लिए मानसिक पीड़ा या भय का कारण बनता है । इसलिए, 'क्रूरता' वादी के प्रति ऐसी क्रूरता से व्यवहार करती है, जिससे उसके मन में एक युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न हो जाती है कि वादी के लिए दूसरे पक्षकार के साथ रहना हानिप्रद या हानिकारक होगा और ऐसी क्रूरता कुटुंब जीवन की सामान्य टूट-फूट से भिन्न होनी चाहिए । इसे वादी की संवेदनशीलता के आधार पर विनिश्चित नहीं किया जा सकता है तथा इसका न्यायनिर्णयन आचरण के अनुक्रम के आधार पर किया जाना चाहिए, जो सामान्य रूप से, एक पति या पत्नी के लिए दूसरे पति या पत्नी के साथ रहने के लिए जोखिमपूर्ण हो । न्यायालय का यह सुस्थिर सिद्धांत है कि क्या वादी किसी दिए गए मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों में, क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करने के लिए मामला बनाने में समर्थ हुआ है । यह उस मामले के अभिवचनों और साक्ष्यों की प्रकृति पर निर्भर करेगा और इसके लिए न ही कोई स्ट्रेटजैकेट सिद्धान्त हो सकता है और नहीं इसके लिए घटनाओं

की एक विस्तृत सूची तैयार की जा सकती है, जहां क्रूरता विवाह एक या दूसरे पक्षकार द्वारा कारित की गई है । क्रूरता का अनुमान किसी सिद्धान्त को लागू करके भी नहीं लगाया जा सकता है, क्योंकि उक्त प्रश्न का निर्धारण पक्षकारों की सामाजिक स्थिति, उनकी वित्तीय और अन्य परिस्थितियों, वातावरण और उनके द्वारा किए जाने वाले रोजगार या व्यवसाय के प्रकार को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए और यह सब भी महत्वपूर्ण होगा कि क्या किए गए अभिकथनों के समूह से वादी के लिए दूसरे पक्षकार के साथ रहना कठिन हो गया है और वादी के साथ इस प्रकार का व्यवहार क्रूरता के समान है । अब न्यायालय इस बात का परीक्षण करने के लिए अग्रसर होगा कि क्या अपीलार्थी उच्चतम न्यायालय द्वारा ऊपर उल्लिखित निर्णयों में निर्धारित परीक्षण के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री को प्राप्त करने में सफल होने के लिए क्रूरता का आधार स्थापित करने में समर्थ रहा है । वादपत्र में क्रूरता की सात घटनाओं का अभिवाक् किया गया है । वे हैं : (i) प्रत्यर्थी द्वारा अपने भाई के लिए ऋण प्राप्त करने के लिए अपीलार्थी या उसके माता-पिता को सूचित किए बिना आभूषणों को गिरवी रखना; (ii) उसके माता-पिता का उनके वैवाहिक जीवन में हस्तक्षेप; (iii) पुत्र को अपीलार्थी की अनुपस्थिति में उसकी अनुज्ञा के बिना गृह से बाहर दूसरे गांव ले जाना; (iv) पत्नी द्वारा अभद्र और गंदी भाषा का प्रयोग करना; (v) जब अपीलार्थी दूसरे गांव से लौटा तो प्रत्यर्थी का रात में दरवाजा न खोलना; (vi) प्रत्यर्थी का किसी अन्य पुरुष के साथ सोने की धमकी; और (vii) अपीलार्थी की सेवा राइफल ले लेना तथा उसे अपीलार्थी के कार्यालय में ले जाना जिसे समाचार-पत्र में प्रकाशित किया गया था । क्रूरता की उपरोक्त घटनाएं वैवाहिक जीवन की सामान्य टूट-फूट प्रतीत होती है । आभूषण गिरवी रखने या पुत्र तनिष्क को उपचार के लिए ले जाने के लिए अपीलार्थी या अपीलार्थी के माता-पिता से अनुज्ञा की ईप्सा न करना क्रूरता नहीं हो सकती है । इसी प्रकार, वैवाहिक जीवन में प्रत्यर्थी के माता-पिता का हस्तक्षेप प्रत्यर्थी द्वारा क्रूरता नहीं है । प्राय: यह हर विवाहित जोड़े के जीवन में होता है और अधिकांश अवसरों पर कुटुंब के बुजुर्ग सदस्यों द्वारा सलाह लेने को वैवाहिक जीवन में हस्तक्षेप के रूप में माना जाता है । जहां तक पत्नी द्वारा अभद्र और गंदी भाषा का

प्रयोग करने का संबंध है, इसके लिए कोई भी स्वतंत्र संपोषक साक्ष्य नहीं है । अभिवचनों के अनुसार यह विशिष्ट घटना और प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा पश्चात्वर्ती व्यंग्य पड़ोसियों की उपस्थिति में हुई, लेकिन आश्चर्यजनक रूप से इस घटना को साबित करने के लिए अपीलार्थी द्वारा किसी स्वतंत्र साक्षी को प्रस्तुत नहीं किया गया है । जहां तक अपीलार्थी के कार्यालय में प्रत्यर्थी द्वारा अपने साथ अपीलार्थी की सेवा राइफल लाने की घटना का संबंध है, प्रत्यर्थी-पत्नी ने स्पष्ट किया है कि अपीलार्थी सेवा राइफल का उपयोग करके प्रत्यर्थी को गोली मारने की धमकी दे रहा था, इसलिए, प्रत्यर्थी राइफल को 8वीं बटालियन के वरिष्ठ अधिकारियों के पास जमा करने के लिए लाई थी । जब अपीलार्थी से विशिष्ट प्रश्न किया गया कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने बटालियन कमांडर श्री एच. पी. राठौर को इस विषय में सूचित किया था, तो अपीलार्थी ने इस विषय में कोई भी जानकारी होने से इनकार कर दिया । इस प्रकार, वादपत्र की कोई भी घटना हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अर्थ के अधीन क्रूरता कारित करने की श्रेणी में नहीं आता है और न ही यह वैवाहिक क्रूरता को सिद्ध करने की विधिक आवश्यकता को पूर्ण करता है । विचारण न्यायालय ने पूर्ण साक्ष्यों पर चर्चा की है और इस निष्कर्ष पर पहुंचा है, कि अपीलार्थी क्रूरता को साबित करने में असफल रहा है । न्यायालय यह निष्कर्ष नहीं निकालता है कि विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य का मूल्यांकन और अभिलिखित निष्कर्ष अनुचित है । आक्षेपित निर्णय और डिक्री न्यायसंगत और उचित है, जिसमें इस न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है । जहां तक विवाह के असुधार्य रूप से टूटने का संबंध है, उक्त को धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की ईप्सा के आधार के रूप में प्रगणित नहीं किया गया है । इसलिए, हम अपीलीय अधिकारिता के अधीन, अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन आच्छादित नहीं होने के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री को मंजूर नहीं कर सकते हैं । (पैरा 12, 13, 22, 23, 24, 25, 26 और 27)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 11 एस. सी. 539 : **रामचंदर** बनाम **अनंता** ;	21

[2010] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1042 :
मनीषा त्यागी बनाम **दीपक कुमार** ; 21

[2007] 2007 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 896 :
सुजाता उदय पाटिल बनाम **उदय मधुकर पाटिल** ; 21

[2006] (2006) 4 एस. सी. सी. 558 :
नवीन कोहली बनाम **नीलू कोहली** ; 20

[2005] (2005) 2 एस. सी. सी. 22 :
ए. जयचंद्र बनाम **अनिल कौर** ; 19

[2002] (2002)2 एस. सी. सी. 619 :
गणनाथ पटनायक बनाम **उड़ीसा राज्य** ; 16

[2002] (2002) 5 एस. सी. सी. 706 :
परवीन मेहता बनाम **इंद्रजीत मेहता**; 17

[2001] (2001) 4 एस. सी. सी. 250 :
चेतन दास बनाम **कमला देवी** ; 18

[1994] (1994) 1 एस. सी. सी. 337 :
वी. भगत बनाम **डी. भगत (श्रीमती)** ; 15

[1981] (1981) 4 एस. सी. सी. 250 :
सिराजमोहम्मदखान जानमोहम्मदखान बनाम
हाफिजुन्निसा यासिनखान और अन्य ; 15

[1975] (1975) 2 एस. सी. सी. 326 :
डा. एन. जी. दास्ताने बनाम **श्रीमती एस. दास्ताने** ; 14

[1950] (1950) 2 आल ई. आर. 398 :
कास्लेफस्काई बनाम **जे. कास्लेफस्काई** । 14

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की एफ. ए. एम. सं. 17.

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री आदित्य भारद्वाज

प्रत्यर्थी की ओर से श्री राकेश ठाकुर

कार्यवाहक मुख्य न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार मिश्रा – कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19(1) के अधीन अपीलार्थी/पति द्वारा फाइल इस अपील में कुटुंब न्यायालय, राजनंदगांव द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को प्रश्नगत किया गया है, जिसमें पक्षकारों के बीच विवाह का विघटन करने से इनकार कर दिया गया था ।

2. सिविल वाद सं. 72-ख/2011 में इससे पूर्व कुटुंब न्यायालय, राजनंदगांव द्वारा तारीख 27 अक्तूबर, 2014 को पारित निर्णय और डिक्री द्वारा पक्षकारों के बीच विवाह को विघटित करने वाले पति (इसमें अपीलार्थी) के वाद को मंजूर कर लिया गया था । तथापि, पत्नी (इसमें प्रत्यर्थी) द्वारा प्रस्तुत 2014 की एफएएम सं. 112 में निर्णय और डिक्री को इस न्यायालय द्वारा तारीख 7 जुलाई, 2017 के निर्णय के माध्यम से अपास्त कर दिया गया था और मामले में नवीन निर्णय देने के लिए विचारण न्यायालय को वापस भेज दिया था । प्रतिप्रेषण आदेश इस कारण से दिया गया था क्योंकि पूर्व के अवसर पर विचारण न्यायालय ने केवल सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 आदेश 18 नियम 4 के (संक्षेप में 'सीपीसी') अधीन शपथपत्र में दिए गए साक्षियों के सभी कथनों को उद्धृत किया था और बिना किसी चर्चा या साक्ष्य का मूल्यांकन किए बिना ही क्रूरता के संबंध में निष्कर्ष अभिलिखित किए थे । इस न्यायालय ने पाया है कि अधिकतर पैराग्राफों में या तो अभिवचनों को उद्धृत किया गया है या सीपीसी के आदेश 18 नियम 4 के अधीन पक्षकारों द्वारा दिए गए कथनों को उद्धृत किया गया है ।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि पक्षकारों ने फरवरी, 2024 में बुद्धा जनजातियों के बीच प्रचलित रीति-रिवाजों और संस्कारों के अनुसार विवाह किया था । उन्हें उनके विवाह से दो बच्चे अर्थात् तनिष्क और दिव्यांशी का जन्म हुआ । प्रत्यर्थी-पत्नी ने जुलाई, 2010 में अपना दाम्पत्य गृह और अपीलार्थी-पति के सहचर्य को छोड़ दिया और इसके पश्चात् से प्रत्यर्थी-पत्नी अपने बच्चों के साथ बसंतपुर, वार्ड सं. 38, राजनंदगांव में रह रही है । विवाह के समय, अपीलार्थी 8वीं बटालियन, रिजर्व पुलिस, राजनंदगांव में कांस्टेबल के रूप में कार्यरत था, जबकि प्रत्यर्थी फाफम्मार में शिक्षा कर्मी ग्रेड-III के रूप में कार्य कर रही थी और इसलिए अपीलार्थी ने उसके निवास के लिए गांव गेंदाटोला में एक

गृह किराए पर लिया था । विवाह के प्रारंभिक दिनों में उनका संबंध सामान्य था, लेकिन अपीलार्थी के अनुसार, लगभग छह माह के पश्चात् प्रत्यर्थी का व्यवहार क्रूरतापूर्ण हो गया था ।

4. अपीलार्थी ने यह भी अभिवाक् किया है कि प्रत्यर्थी ने अपने भाई के लिए एक स्थानीय उधारदाता से अपने आभूषणों को गिरवी उधार प्राप्त किया था और उक्त तथ्य अपीलार्थी के ध्यान में तब आया जब उधारदाता ने उधार वापस करने के लिए अपीलार्थी के पिता से संपर्क किया । इससे अपीलार्थी के पिता को उलझन की अनुभूति हुई, क्योंकि प्रत्यर्थी ने बिना उनकी अनुज्ञा के उधार लिया था । दीपावली उत्सव के समय अपीलार्थी के पिता ने प्रत्यर्थी को ऐसा न करने की सलाह दी थी, लेकिन उस समय प्रत्यर्थी ने अपना आपा खो दिया था और अभिकथन किया था कि अपीलार्थी और उसके कुटुंब के सदस्य लालची हैं । प्रत्यर्थी ने गंदी भाषा का भी प्रयोग था, जो प्रत्येक महिला तथा विशिष्ट रूप से एक बहू के सम्मान के विरुद्ध है । इसके पश्चात् से प्रत्यर्थी ने छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा करना प्रारंभ कर दिया । दंपत्ति के आपसी विवाद में उसकी मां और बहन हस्तक्षेप करने लगी थी । एक दिन जब अपीलार्थी अपने कार्य से लौटा, तो उसने प्रत्यर्थी को गृह में नहीं पाया और इसलिए, उसने प्रत्यर्थी के बारे में भू-स्वामिनी से पूछताछ की तो भू-स्वामिनी ने अपीलार्थी को सूचित किया कि प्रत्यर्थी अपने माता-पिता के गृह पर गई है क्योंकि उसके पुत्र तनिष्क को अच्छा नहीं लग रहा था । अपीलार्थी को यह अनुभूति हुई कि प्रत्यर्थी उसकी उपेक्षा कर रही है क्योंकि प्रत्यर्थी पुन: उसे बिना सूचित किए ही गृह से बाहर चली गई थी । अपीलार्थी सीधे बिजेपार में प्रत्यर्थी के माता-पिता के गृह पर गया और प्रत्यर्थी से पूछा कि प्रत्यर्थी ने बिना अपीलार्थी को सूचित किए ही गृह क्यों छोड़ दिया । इस पर प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को अशिष्टतापूर्ण अपशब्द कहना प्रारंभ कर दिया तथा प्रत्यर्थी की मां (अपीलार्थी की सास) ने अपीलार्थी को थप्पड़ मार दिया । एक अन्य अवसर पर अपीलार्थी मड़ई देखने के लिए दूसरे गांव गया था तथा लगभग 10 बजे वहां से लौटने के बाद अपीलार्थी ने दरवाजा खोलने के लिए प्रत्यर्थी को ऊंचे स्वर में बुलाया, लेकिन प्रत्यर्थी ने दरवाजा नहीं खोला । अपीलार्थी ने किसी तरह से पड़ोसियों की सहायता से दरवाजा खोला और प्रत्यर्थी से पूछा कि

वह जागी क्यों नहीं, लेकिन प्रत्यर्थी ने वहां खड़े एक व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए कहा कि वह उसके (अपीलार्थी) सामने उस व्यक्ति के साथ सोएगी । यह सब सुनकर अपीलार्थी को आघात पहुंचा ।

5. अपीलार्थी ने यह भी अभिवाक् किया है कि जब वह प्रत्यर्थी को प्यार करना चाहता था तो उसने आपत्ति की; प्रत्यर्थी को अशिष्ट अपशब्द कहे और जब अपीलार्थी ने सोना चाहा तो प्रत्यर्थी ने उसे बाहर निकाल दिया । एक अन्य दिन, प्रत्यर्थी अपीलार्थी के कार्यालय के बाहर आई जिसके विषय में अपीलार्थी को उसके सहकर्मी ने सूचित किया और वहां अपीलार्थी ने देखने पर पाया कि प्रत्यर्थी दो बच्चों तथा एक अन्य व्यक्ति के साथ थी । प्रत्यर्थी वहां अपीलार्थी की पूर्ण रूप से भरी हुई एसएलआर सेवा राइफल अपनी साड़ी के नीचे लाई थी, जिसे अपीलार्थी के सहकर्मियों द्वारा छीन लिया गया । इस मामले को समाचार-पत्र में प्रकाशित किया गया था जिससे अपीलार्थी को अपमान की अनुभूति हुई । जून, 2010 में आयोजित जाति पंचायत के पश्चात् से वे गांव धानगांव में एक साथ रहने लगे और एक सप्ताह तक एक-साथ रहे । राइफल की घटना के कारण अपीलार्थी दुखी और उग्रता का अनुभव कर रहा था, लेकिन प्रत्यर्थी को इस बात पर कोई भी अपराध बोध नहीं था तथा प्रत्यर्थी ऊंचे स्वर में गाती और हंसा करती थी । प्रत्यर्थी से यह पूछे जाने पर कि क्या उसे इतनी बड़ी घटना पर कोई भी लज्जा नहीं है, तो प्रत्यर्थी ने इस पर फिनाइल पी लिया और प्रत्यर्थी को राजनंदगांव के जिला चिकित्सालय में भर्ती कराया गया था । अन्वेषण के दौरान पुलिस ने प्रत्यर्थी का कथन अभिलिखित किया । प्रत्यर्थी जुलाई, 2010 से अलग रह रही थी । तारीख 13 मार्च, 2011 को आयोजित जाति पंचायत की बैठक में, उन्हें पुन: एक साथ रहने का निर्देश दिया गया था, जिसका अनुपालन अपीलार्थी, प्रत्यर्थी के आचरण और व्यवहार के कारण नहीं कर सका था और इसलिए समाज ने सामाजिक रूप से अपीलार्थी और उसके कुटुंब का बहिष्कार कर दिया था ।

6. प्रत्यर्थी ने अपना लिखित कथन फाइल किया और वादपत्र के तात्विक अभिकथनों से इनकार किया है । प्रत्यर्थी ने अभिवाक् किया है कि अपीलार्थी की भिन्न-भिन्न स्थानों पर तैनाती की समस्या के कारण वह राजनंदगांव में अपने बच्चों के साथ रह रही है । उसका पक्षकथन

यह है कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी की पिटाई के पश्चात् उसे गृह से बाहर निकाल दिया था और विवाह के समय पर उपहार में दी गई वस्तुएं अपने पास रख लिया था । प्रत्यर्थी ने अभिकथन किया है कि अपीलार्थी का व्यवहार प्रारंभ से ही बहुत अशिष्ट और क्रूर है । अपीलार्थी अपनी सेवा राइफल से प्रत्यर्थी को जान से मारने की धमकी दिया करता था, इसलिए उक्त सेवा राइफल को प्रत्यर्थी ने विभाग के पास जमा करा दिया है ।

7. विचारण के दौरान, अपीलार्थी ने स्वयं की परीक्षा अभि. सा. 1 के रूप में; सूरज लाल बंजारे (अभि. सा. 2) ; रामप्रसाद मेश्राम (अभि. सा. 3); तेजपाल राणा (अभि. सा. 4); और लखन लाल मेश्राम (अभि. सा. 5) की परीक्षा कराई है । दूसरी ओर, प्रत्यर्थी ने स्वयं की परीक्षा प्रतिवादी सा.-1 के रूप में; पार्वती साहू (प्रतिवादी सा.-2); बलदेव बोरकर (प्रतिवादी सा.-3); और भुवन लाल रामटेके (प्रतिवादी सा.-4) की परीक्षा कराई है ।

8. साक्ष्यों का मूल्यांकन करने पर, विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए वाद को खारिज कर दिया था कि अपीलार्थी - प्रत्यर्थी के द्वारा उसके प्रति क्रूरता कारित करने का मामला बनाने में असफल रहा है ।

9. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने तर्क दिया कि क्रूरता के संबंध में निष्कर्ष अनुचित है । वादपत्र में अभिवाचित घटनाओं की संख्या और साक्षियों के कथन से सम्यक् रूप से साबित घटनाएं यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त हैं कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के साथ वैवाहिक क्रूरता कारित की है और अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का एक रहना कठिन है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी तर्क दिया है कि विवाह, असुधार्य रूप के तौर पर टूट गया है, इसलिए, अपीलार्थी विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार है ।

10. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने इसके विपरीत यह तर्क दिया है कि वादपत्र में वर्णित क्रूरता की घटनाएं, दिन-प्रतिदिन के जीवन की साधारण टूट-फूट है, जो प्रत्येक विवाहित जोड़े के जीवन में होती रहती है, इसलिए, ये क्रूरता कारित करने की कोटि में नहीं आती है ।

11. अब हम उच्चतम न्यायालय द्वारा सुस्थिर सिद्धांतों पर विचार करेंगे, यह पता लगाने के लिए कि कब पति/पत्नी के प्रति हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (संक्षेप में 'अधिनियम, 1955') की धारा 13(1)(ia) के अर्थान्तर्गत वैवाहिक क्रूरता कारित करना कहा जा सकता है ।

12. विवाह-विच्छेद की डिक्री, क्रूरता के आधार पर प्रदान की जा सकती है, तथापि, 'क्रूरता' शब्द को अधिनियम, 1955 के अधीन परिभाषित नहीं किया गया है, इसलिए, विवाह के पक्षकार का कौन-सा कार्य या लोप, आचरण या व्यवहार क्रूरता का गठन करेगा, इस प्रश्न को प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में समझा जाना चाहिए ।

13. यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि मानसिक क्रूरता एक दूसरे के प्रति पति या पत्नी का आचरण है जो एक-दूसरे के प्रति पति या पत्नी के वैवाहिक जीवन के लिए मानसिक पीड़ा या भय का कारण बनता है । इसलिए, "क्रूरता" वादी के प्रति ऐसी क्रूरता से व्यवहार करती है, जिससे उसके मन में एक युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न हो जाती है कि वादी के लिए दूसरे पक्षकार के साथ रहना हानिप्रद या हानिकारक होगा और ऐसी क्रूरता कुटुंब जीवन की सामान्य टूट-फूट से भिन्न होनी चाहिए । इसे वादी की संवेदनशीलता के आधार पर विनिश्चित नहीं किया जा सकता है तथा इसका न्यायनिर्णयन आचरण के अनुक्रम के आधार पर किया जाना चाहिए, जो सामान्य रूप से, एक पति या पत्नी के लिए दूसरे पति या पत्नी के साथ रहने के लिए जोखिमपूर्ण हो ।

14. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अनेक निर्णयों में मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किए हैं । **डा. एन. जी. दास्ताने** बनाम **श्रीमती एस. दास्ताने**[1] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने यह उल्लिखित किया है कि जांच यह होनी चाहिए कि क्या क्रूरता के रूप में आरोपित आचरण ऐसे चरित्र का है, जिससे अर्जीदार के मन में एक ऐसी युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न हो कि उसका प्रत्यर्थी के साथ रहना अर्जीदार के लिए हानिप्रद या जोखिमपूर्ण होगा ।

विद्वान् न्यायाधीश लॉर्ड डेनिंग ने **कास्लेफस्काई** बनाम **जे. कास्लेफस्काई**[2] वाले मामले में, इस प्रकार से मत व्यक्त किया है :–

> "यदि क्रूरता को अत्यधिक व्यापक किया गया तो हम शीघ्र ही स्वयं को स्वभाव की असंगतता के लिए विवाह-विच्छेद प्रदान करते हुए पाएंगे । यह चलन का एक सरल मार्ग है, विशेष रूप से अर्थात्

---

[1] (1975) 2 एस. सी. सी. 326.

[2] (1950) 2 आल ई. आर. 398.

वादित मामलों में, प्रलोभन का प्रतिविरोध किया जाना चाहिए, ऐसा न हो कि हम ऐसे मामलों की स्थिति में फिसल जाए जहां विवाह की संस्था ही संकट में आ जाए ।"

15. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **वी. भगत** बनाम **डी. भगत (श्रीमती)**[1] वाले मामले में, अभिनिर्धारित किया है कि धारा 13(1)(ia) में मानसिक क्रूरता को विस्तृत रूप में उस आचरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो दूसरे पक्षकार पर ऐसी मानसिक पीड़ा और यातना को अधिरोपित करता हो, जिससे उस पक्षकार के लिए दूसरे पक्षकार के साथ रहना संभव न हो । दूसरे शब्दों, मानसिक क्रूरता ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए कि पक्षकारों से युक्तियुक्त रूप से एक साथ रहने की आशा नहीं की जा सकती है । स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि गलत पक्षकार के युक्तियुक्त रूप से इस प्रकार के आचरण को सहने और दूसरे पक्षकार के साथ रहना जारी रखने के लिए नहीं कहा जा सकता है । यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि मानसिक क्रूरता इस प्रकार की है कि जिससे अर्जीदार के स्वास्थ्य को हानि पहुंचे । इस प्रकार के निष्कर्ष पर पहुंचने के दौरान, पक्षकारों की सामाजिक स्थिति, पक्षकारों के शैक्षणिक स्तर, पक्षकार जिस समाज में रहते हैं, यदि पक्षकार पूर्व से ही पृथक् रूप से रह रहे हैं तो उनकी एक साथ रहने की संभावना या अन्यथा और अन्य सुसंगत तथ्य और परिस्थितियां जिन्हें विस्तृत रूप से निर्धारित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय है । एक मामले में जो क्रूरता है वह दूसरे मामले में क्रूरता नहीं हो सकती है । यह उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह प्रत्येक मामले में अवधारित किया जाने वाला मामला है । यदि यह अभियोगों और अभिकथनों का पक्षकथन है तो उसे उस संदर्भ में होना चाहिए जिसके संबंध में वे किए गए थे ।

सिराजमोहम्मदखान जानमोहम्मदखान बनाम **हाफिजुन्निसा यासिनखान और अन्य**[2] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि क्रूरता की अवधारणा सामाजिक अवधारणा और जीवन स्तर के परिवर्तनों और उन्नति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है । हमारी

---

[1] (1994) 1 एस. सी. सी. 337.

[2] (1981) 4 एस. सी. सी. 250.

सामाजिक अवधारणाओं की प्रगति के साथ इस विशेषता ने विधिमान्यता प्राप्त की है कि दूसरा विवाह पृथक् निवास के लिए और भरण-पोषण के लिए एक पर्याप्त आधार है । इसके अतिरिक्त, विधिक क्रूरता स्थापित करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि शारीरिक हिंसा का उपयोग किया गया हो । निरंतर दुर्व्यवहार, वैवाहिक संभोग की समाप्ति, सुनिश्चित उपेक्षा, पति की ओर से उदासीनता और पति की ओर से यह दावा कि पत्नी अपवित्र है, ये सभी कारक हैं, जो मानसिक या विधिक क्रूरता की ओर ले जाते हैं ।

16. एक बार पुन:, **गणनाथ पटनायक** बनाम **उड़ीसा राज्य**[1] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि क्रूरता की अवधारणा और इसका प्रभाव एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति पर भिन्न-भिन्न होता है तथा यह उस सामाजिक और आर्थिक स्तर पर भी निर्भर करता है जिससे वह व्यक्ति संबंधित है । पूर्वोक्त धारा के अधीन अपराध का गठन करने के उद्देश्य के लिए 'क्रूरता' का शारीरिक होने की आवश्यकता नहीं है । यहां तक कि मानसिक यातना या असामान्य व्यवहार भी किसी दिए गए मामले में क्रूरता और उत्पीड़न के समान हो सकता है ।

17. **परवीन मेहता** बनाम **इंद्रजीत मेहता**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा इसी प्रकार की मताभिव्यक्ति की गई है जिसमें निम्नलिखित रूप से अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "21. धारा 13(1)(ia) के उद्देश्य के लिए क्रूरता को पति या पत्नी द्वारा एक-दूसरे के प्रति व्यवहार के रूप में लिया जाना चाहिए, जो पति या पत्नी के मन में एक दूसरे के प्रति युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न करता है कि उसके लिए दूसरे के साथ वैवाहिक संबंध जारी रखना सुरक्षित नहीं है । मानसिक क्रूरता, पति-पत्नी के व्यवहार के कारण दूसरे के साथ उसकी मनःस्थिति और उसका मनोभाव है । इसी प्रकार, शारीरिक क्रूरता के मामले में, मानसिक क्रूरता को प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा

---

[1] (2002) 2 एस. सी. सी. 619.

[2] (2002) 5 एस. सी. सी. 706.

सिद्ध करना कठिन है ।" यह आवश्यक रूप से मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से निकाले जाने वाले निष्कर्ष का विषय है । दूसरे के आचरण के कारण पति या पत्नी में पीड़ा, निराशा और हताशा की भावना का मूल्यांकन केवल उपस्थित उन तथ्यों और परिस्थितियों का परिनिर्धारण करने पर किया जा सकता है, जिसमें वैवाहिक जीवन के दो भागीदार रह रहे हैं । तथ्यों और परिस्थितियों को संचयी रूप से लेकर निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए । मानसिक क्रूरता के मामले में दुर्व्यवहार के एक उदाहरण को पृथक् रूप से लेकर तथा उसके पश्चात् यह प्रश्न उठाना उचित दृष्टिकोण नहीं होगा कि क्या ऐसा व्यवहार मानसिक क्रूरता को उत्पन्न करने के लिए अपने आप में पर्याप्त हैं । दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य से प्रकट होने वाले तथ्यों और परिस्थितियों का संचयी प्रभाव लिया जाए और उसके पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला जाए कि क्या विवाह-विच्छेद की अर्जी में अर्जीदार को दूसरे के आचरण के कारण मानसिक क्रूरता के अध्यधीन रहा है ।"

18. **चेतन दास** बनाम **कमला देवी**[1] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है, कि वैवाहिक मामलें संवेदनशील मानवीय और भावनात्मक संबंधों के मामले होते हैं । यह पति-पत्नी के बीच युक्तियुक्त सामंजस्य के लिए पर्याप्त भूमिका के साथ पारस्परिक विश्वास, आदर, सम्मान, प्रेम और स्नेह की मांग करता है । संबंध को सामाजिक मानदंडों के अनुरूप भी होना चाहिए । अब वैवाहिक आचरण ऐसे मानदंडों और बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए विरचित कानूनों द्वारा शासित होते हैं । इसे व्यक्तियों के हित में और व्यापक परिप्रेक्ष्य में नियंत्रित करने की ईप्सा की गई है, जिससे एक संगठित, स्वस्थ, शांत और सुभेद्य समाज बनाने के लिए वैवाहिक मानदंडों को विनियमित किया जा सके । साधारणतः, विवाह की संस्था समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है और समाज में भूमिका निभाती है । इसलिए, विवाह-विच्छेद का अनुतोष प्रदान करने के लिए सीधे तौर पर 'असुधार्य रूप से टूटे विवाह' के

[1] (2001) 4 एस. सी. सी. 250.

फार्मूले के रूप में किसी भी निवेदन को लागू करना समुचित नहीं होगा । इस पहलू पर मामले के अन्य तथ्यों और परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में विचार किया जाना चाहिए ।

19. **ए. जयचंद्र** बनाम **अनिल कौर**[1] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम में 'क्रूरता' की अभिव्यक्ति को परिभाषित नहीं किया गया है । क्रूरता, शारीरिक या मानसिक हो सकती है । क्रूरता जो विवाह के विघटन का आधार है, तो ऐसे चरित्र को जान-बूझकर और अन्यायपूर्ण आचरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है तथा जो जीवन, अंग या स्वास्थ्य, शारीरिक या मानसिकता के लिए संकट उत्पन्न करता है या इस प्रकार के संकट को उत्पन्न करने की युक्तियुक्त आशंका को जन्म देता है । मानसिक क्रूरता के प्रश्न पर जिससे पक्षकार संबंधित है, उस विशेष समाज के वैवाहिक संबंधों के मानदंडों, उनके सामाजिक मूल्यों, स्थिति, पर्यावरण जिसमें वे निवास करते हैं, के आलोक में विचार किया जाना चाहिए । क्रूरता, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, में मानसिक क्रूरता सम्मिलित है, जो एक वैवाहिक दोष की परिधि में आती है । क्रूरता का शारीरिक होना आवश्यक नहीं है । यदि पति पत्नी के आचरण से यह स्थापित हो जाता है और/या वैध रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पति या पत्नी का व्यवहार ऐसा है कि यह दूसरे के मन में उसके मानसिक कल्याण के विषय में आशंका उत्पन्न करता है तो इस प्रकार का आचरण क्रूरता के समान होगा । विवाह जैसे संवेदनशील मानवीय संबंध में, हमें मामले की संभावनाओं को देखना होगा । संदेह की छाया से परे सबूत की संकल्पना को आपराधिक विचारणों पर लागू किया जाना चाहिए, न कि सिविल मामलों पर और निश्चित रूप से पति और पत्नी के रूप में इस प्रकार के संवेदनशील निजी संबंधों पर नहीं लागू किया जाना चाहिए । इसलिए, हमें यह देखना होगा कि किसी मामले से क्या संभावनाएं हैं और कानूनी क्रूरता का पता लगाया जाना चाहिए, न केवल तथ्य के रूप में, बल्कि दूसरे पति-पत्नी के कार्य या लोप के कारण शिकायतकर्ता पति या पत्नी के मस्तिष्क पर इसके प्रभाव के रूप में भी पता लगाया जाना चाहिए । क्रूरता शारीरिक या मूर्त या

---

[1] (2005) 2 एस. सी. सी. 22.

मानसिक हो सकती है । शारीरिक क्रूरता में, मूर्त और प्रत्यक्ष साक्ष्य हो सकते हैं, लेकिन मानसिक क्रूरता के मामले में एक ही समय में प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं हो सकते हैं । ऐसे मामलों में जहां कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है, वहां न्यायालयों से उन घटनाओं की मानसिक प्रक्रिया और उनके मानसिक प्रभाव की जांच की अपेक्षा होती है, जिन्हें साक्ष्य में सामने लाया जाता है । यह इस दृष्टिकोण में है, कि किसी को वैवाहिक विवादों में साक्ष्यों पर विचार करना होगा ।

20. **नवीन कोहली** बनाम **नीलू कोहली**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि "क्रूरता" शब्द वैवाहिक मामलों में शब्द के सामान्य अर्थ में समझा जाना चाहिए । यदि हानि, उत्पीड़न या उपहति कारित करने के आशय का अनुमान आचरण की प्रकृति शिकायत किए गए क्रूर कृत्य से लगाया जा सकता है, तो क्रूरता को सरलता से स्थापित किया जा सकता है । लेकिन आशय के अभाव में, मामले में कोई भी अंतर नहीं आना चाहिए । किसी भी पक्षकार के अनैच्छिक लेकिन अक्षम्य आचरण से क्रूरता की घटनाएं हो सकती हैं, क्रूर व्यवहार पक्षकारों के मध्य सांस्कृतिक संघर्ष के परिणामस्वरूप भी हो सकता है । मानसिक क्रूरता एक पक्षकार के कारण तब हो सकती है, जब दूसरा पति या पत्नी यह अभिकथन करता है कि अर्जीदार एक मानसिक रोगी है या अर्जीदार को अपने मानसिक स्वास्थ्य को बहाल करने के लिए विशेषज्ञ मनोवैज्ञानिक से उपचार की आवश्यकता है तथा यह कि वह पागलपन-संबंधी विकार और मानसिक मतिभ्रम से पीड़ित है और इसे शिखर तक ले जाते हुए यह अभिकथन करना कि वह और उसके कुटुंब के सभी सदस्य पागलों का एक समूह हैं । यह अभिकथन कि अर्जीदार के सभी कुटुंब के सदस्य पागल हैं और की अर्जीदार के पूरे कुटुंब में पागलपन के लक्षण हैं, यह भी मानसिक क्रूरता के कार्य हैं ।

21. **सुजाता उदय पाटिल** बनाम **उदय मधुकर पाटिल**[2] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि "क्रूरता" शब्द और "क्रूरता" के प्रकार या क्रूरता की मात्रा जो वैवाहिक अपराध के समान हो सकती है, उसे अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है । क्रूर

---

[1] (2006) 4 एस. सी. सी. 558.

[2] 2007 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 896.

व्यवहार क्या है, यह काफी सीमा तक तथ्य का प्रश्न या विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न है और इस प्रकार के मामलों में न्यायालय के समक्ष उत्पन्न होने वाली इन विभिन्न समस्याओं का कोई ठोस उत्तर नहीं दिया जा सकता है । विधि में कोई भी ऐसा मानक नहीं है जिसके द्वारा क्रूर व्यवहार की प्रकृति या क्रूर व्यवहार की मात्रा को मापा जा सके तथा जो उस परीक्षण को संतुष्ट कर सके । इसमें स्वभाव, भावना या व्याप्ति की भूमिका भी सम्मिलित हो सकती है, जिसमें कोई दूसरे को हानि पहुंचाने के आशय के बिना अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है । इसमें दूसरे के विरुद्ध प्रत्यक्ष कार्रवाई सम्मिलित नहीं हैं । लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से दूसरे पति या पत्नी को प्रभावित करने वाला कदाचार हो सकता है, भले ही वह उस पति या पत्नी पर कारित करने के उद्देश्य या पत्नी पर कारित करने के उद्देश्य से न किया गया हो । एक पति या पत्नी के व्यक्तित्व और आचरण के प्रभाव को दूसरे पति-पत्नी के मन पर इसके प्रभाव को ध्यान में रखते हुए पक्षकारों के मध्य सभी घटनाओं और झगड़ों का मूल्यांकन करना आवश्यक है । क्रूरता का अनुमान पक्षकारों के तथ्यों और वैवाहिक संबंधों से लगाया जा सकता है और उनकी दैनिक जीवन में साक्ष्य द्वारा प्रकट की गई बातचीत और उक्त बिंदु पर निष्कर्ष केवल तभी निकाला जा सकता है, जब सभी तथ्यों को ध्यान में रखा गया हो । जहां एक पति या पत्नी की ओर जानबूझकर किए गए आचरण के अनुक्रम का सबूत है तथा उस आचरण का उद्देश्य दूसरे पति या पत्नी को उपहति कारित करना और अपमानित करना है और इस प्रकार का आचरण बार-बार होता है, तो वहां क्रूरता का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है । क्रूरता में एक आवश्यक तत्व है । **मनीषा त्यागी** बनाम **दीपक कुमार**[1] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अब यह आवश्यक मानक नहीं है । अब यह प्रदर्शित करना पर्याप्त होगा कि पति-पत्नी में से किसी एक का आचरण इतना असामान्य है और पति-पत्नी में से किसी एक का आचरण स्वीकृत मानदंड से नीचे है जिससे कि दूसरे पति-पत्नी से युक्तियुक्त रूप से इसे सहन करने की आशा नहीं की जा सकती है । आचरण को अब इतना नृशंस रूप से घृणित होने की आवश्यकता नहीं है, जो एक ऐसी युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न करे कि दूसरे पति या पत्नी

---

[1] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1042.

के साथ सहवास जारी रखना, दूसरे पति या पत्नी के लिए हानिकारक या पीड़ाकर होगा । इसलिए, क्रूरता सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि शारीरिक हिंसा का प्रयोग किया गया हो । तथापि, निरतंर दुर्व्यवहार, सुनिश्चित उपेक्षा, एक पति या पत्नी द्वारा दूसरे के प्रति उदासीनता से क्रूरता का निष्कर्ष निकल सकता है । तथापि, इस मामले में, पूर्वोक्त मानक के साथ, विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय दोनों ने स्वीकार किया था कि पत्नी का आचरण इस प्रकार की क्रूरता नहीं है जिससे पति विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर सके ।

रामचंदर बनाम **अनंता**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने पुन: यह अभिनिर्धारित किया है कि क्रूरता की घटनाओं को पृथक् रूप से विचार में नहीं लिया जाना चाहिए बल्कि अभिलेख पर साक्ष्य से उद्भूत तथ्यों और परिस्थितियों के संचयी प्रभाव को विचार में लिया जाना चाहिए और उसके उपरांत निष्पक्ष निष्कर्ष निकालना चाहिए कि क्या वादी को अन्य पति-पत्नी के आचरण के कारण मानसिक क्रूरता के अधीन सहना पड़ा है ।

22. इस प्रकार, यह सुस्थिर सिद्धांत है कि क्या वादी किसी दिए गए मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों में, क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करने के लिए मामला बनाने में समर्थ हुआ है । यह उस मामले के अभिवचनों और साक्ष्यों की प्रकृति पर निर्भर करेगा और इसके लिए न ही कोई स्ट्रेटजैकेट सिद्धान्त हो सकता है और नहीं इसके लिए घटनाओं की एक विस्तृत सूची तैयार की जा सकती है, जहां क्रूरता विवाह एक या दूसरे पक्षकार द्वारा कारित की गई है । क्रूरता का अनुमान किसी सिद्धान्त को लागू करके भी नहीं लगाया जा सकता है, क्योंकि उक्त प्रश्न का निर्धारण पक्षकारों की सामाजिक स्थिति, उनकी वित्तीय और अन्य परिस्थितियों, वातावरण और उनके द्वारा किए जाने वाले रोजगार या व्यवसाय के प्रकार को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए और यह सब भी महत्वपूर्ण होगा कि क्या किए गए अभिकथनों के समूह से वादी के लिए दूसरे पक्षकार के साथ रहना कठिन हो गया है और वादी के साथ इस प्रकार का व्यवहार क्रूरता के समान है ।

23. अब हम इस बात का परीक्षण करने के लिए अग्रसर होंगे कि

---

[1] (2015) 11 एस. सी. 539.

क्या अपीलार्थी उच्चतम न्यायालय द्वारा ऊपर उल्लिखित निर्णयों में निर्धारित परीक्षण के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री को प्राप्त करने में सफल होने के लिए क्रूरता का आधार स्थापित करने में समर्थ रहा है ।

24. वादपत्र में क्रूरता की सात घटनाओं का अभिवाक् किया गया है । वे हैं : (i) प्रत्यर्थी द्वारा अपने भाई के लिए ऋण प्राप्त करने के लिए अपीलार्थी या उसके माता-पिता को सूचित किए बिना आभूषणों को गिरवी रखना; (ii) उसके माता-पिता का उनके वैवाहिक जीवन में हस्तक्षेप; (iii) पुत्र को अपीलार्थी की अनुपस्थिति में उसकी अनुज्ञा के बिना गृह से बाहर दूसरे गांव ले जाना; (iv) पत्नी द्वारा अभद्र और गंदी भाषा का प्रयोग करना; (v) जब अपीलार्थी दूसरे गांव से लौटा तो प्रत्यर्थी का रात में दरवाजा न खोजना; (vi) प्रत्यर्थी का किसी अन्य पुरुष के साथ सोने की धमकी; और (vii) अपीलार्थी की सेवा राइफल ले लेना तथा उसे अपीलार्थी के कार्यालय में ले जाना जिसे समाचारपत्र में प्रकाशित किया गया था ।

25. क्रूरता की उपरोक्त घटनाएं वैवाहिक जीवन की सामान्य टूट-फूट प्रतीत होती है । आभूषण गिरवी रखने या पुत्र तनिष्क को उपचार के लिए ले जाने के लिए अपीलार्थी या अपीलार्थी के माता-पिता से अनुज्ञा की ईप्सा न करना क्रूरता नहीं हो सकती है । इसी प्रकार, वैवाहिक जीवन में प्रत्यर्थी के माता-पिता का हस्तक्षेप प्रत्यर्थी द्वारा क्रूरता नहीं है । प्राय: यह हर विवाहित जोड़े के जीवन में होता है और अधिकांश अवसरों पर कुटुंब के बुजुर्ग सदस्यों द्वारा सलाह लेने को वैवाहिक जीवन में हस्तक्षेप के रूप में माना जाता है । जहां तक पत्नी द्वारा अभद्र और गंदी भाषा का प्रयोग करने का संबंध है, इसके लिए कोई भी स्वतंत्र संपोषक साक्ष्य नहीं है । अभिवचनों के अनुसार यह विशिष्ट घटना और प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा पश्चात्वर्ती व्यंग्य पड़ोसियों की उपस्थिति में हुई, लेकिन आश्चर्यजनक रूप से इस घटना को साबित करने के लिए अपीलार्थी द्वारा किसी स्वतंत्र साक्षी को प्रस्तुत नहीं किया गया है । जहां तक अपीलार्थी के कार्यालय में प्रत्यर्थी द्वारा अपने साथ अपीलार्थी की सेवा राइफल लाने की घटना का संबंध है, प्रत्यर्थी-पत्नी ने

स्पष्ट किया है कि अपीलार्थी सेवा राइफल का उपयोग करके प्रत्यर्थी को गोली मारने की धमकी दे रहा था, इसलिए, प्रत्यर्थी राइफल को 8वीं बटालियन के वरिष्ठ अधिकारियों के पास जमा करने के लिए लाई थी । जब अपीलार्थी से विशिष्ट प्रश्न किया गया कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने बटालियन कमांडर श्री एच. पी. राठौर को इस विषय में सूचित किया था, तो अपीलार्थी ने इस विषय में कोई भी जानकारी होने से इनकार कर दिया । इस प्रकार, वादपत्र की कोई भी घटना हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (संक्षेप में 'अधिनियम, 1955') की धारा 13 के अर्थ के अधीन क्रूरता कारित करने की श्रेणी में नहीं आता है और न ही यह वैवाहिक क्रूरता को सिद्ध करने की विधिक आवश्यकता को पूर्ण करता है ।

26. विचारण न्यायालय ने पूर्ण साक्ष्यों पर चर्चा की है और इस निष्कर्ष पर पहुंचा है, कि अपीलार्थी क्रूरता को साबित करने में असफल रहा है । हम यह निष्कर्ष नहीं निकालते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य का मूल्यांकन और अभिलिखित निष्कर्ष अनुचित है । आक्षेपित निर्णय और डिक्री न्यायसंगत और उचित है, जिसमें इस न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है ।

27. जहां तक विवाह के असुधार्य रूप से टूटने का संबंध है, उक्त को धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की ईप्सा के आधार के रूप में प्रगणित नहीं किया गया है । इसलिए, हम अपीलीय अधिकारिता के अधीन, अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन आच्छादित नहीं होने के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री को मंजूर नहीं कर सकते हैं ।

28. इसके परिणामस्वरूप, अपील बिना आधार के और तद्द्वारा इसे खारिज किया जाता है, पक्षकार अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

29. तदनुसार, डिक्री को तैयार किया जाए ।

अपील खारिज की गई ।

अम./क.

अत्तर सिंह

बनाम

भारत संघ और अन्य

[2021 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 12843]

तारीख 16 नवम्बर, 2021

न्यायमूर्ति राजीव शकधर और न्यायमूर्ति तलबंत सिंह

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – रिट याचिका – सरकारी कर्मचारी द्वारा पदच्युति आदेश के विरुद्ध आवेदन फाइल करने में अत्यधिक विलम्ब अर्थात् 2164 दिनों का विलम्ब कारित करना – विलम्ब माफी के लिए कारण देना – समुचित कारण होने के आधार पर आवेदन खारिज होना – यदि किसी मामले में, आवेदन/अपील/रिट आदि फाइल करने में अत्यधिक विलम्ब कारित किया जाता है तो ऐसी दशा में विलम्ब माफी के लिए आवेदन को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता है जब तक कि विलम्ब कारित होने के बारे में समुचित और युक्तियुक्त कारण/कारणों का स्पष्ट तौर पर उल्लिखित नहीं किया जाता है ।

यह रिट याचिका, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (जिसे संक्षेप में "अधिकरण" कहा गया है) द्वारा 2017 की मूल आवेदन संख्या 2919 में पारित तारीख 15 नवम्बर, 2019 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है । आक्षेपित आदेश द्वारा अधिकरण ने याची के मूल आवेदन अर्थात् 2017 की मूल आवेदन संख्या 2919 को इस आधार पर खारिज कर दिया था कि विलम्ब की माफी के लिए पर्याप्त कारण दिए बिना अधिकरण के समक्ष आने में 2164 दिनों का अत्यधिक विलम्ब किया गया है । इससे व्यथित होकर वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई । न्यायालय द्वारा रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – याची के विद्वान् काउंसेल ने यह कथन किया है कि विलम्ब की माफी के लिए आवेदन के समर्थन में एक चिकित्सीय रिपोर्ट याची की ओर से फाइल प्रत्युत्तर के साथ संलग्न की गई थी । लापरवाही जो इस मामले में याची द्वारा की गई है, जिस तथ्य से प्रकट होती है अर्थात् चिकित्सीय रिपोर्ट जिसे इसमे उपर्युक्त उल्लिखित किया गया है, हमारे समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई है । किसी दशा में, न्यायालय द्वारा अधिकरण के समक्ष विलम्ब की माफी के लिए उसके आवेदन में याची द्वारा कथित कारणों की परीक्षा करनी है । याची द्वारा दिए गए कारणों में से कोई भी कारण, अधिकरण के समक्ष आने में 2164 दिनों के विलम्ब का पर्याप्त रूप से सही स्पष्टीकरण नहीं करती है, घटनाओं के वर्णन से यह दर्शित होता है कि प्रत्येक प्रक्रम पर याची ने टालमटोल की है । इसलिए, यदि एक बार यह मान भी लिया जाए कि विलम्ब का कारण उसकी पत्नी की बीमारी थी, तो भी यह विलम्ब का बहुत बड़ा कारण नहीं हो सकता है । (पैरा 6, 6.1, 7 और 7.1)

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2021 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 12843 और 2021 की सिविल प्रकीर्ण संख्या 40444.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री लालता प्रसाद, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति राजीव शकधर ने दिया ।

न्या. शकधर –

2021 की सिविल प्रकीर्ण संख्या 40444

1. ठीक अपवादों के अध्यधीन मंजूर किया गया ।

2021 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 12843

2. यह रिट याचिका, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (जिसे संक्षेप में "अधिकरण" कहा गया है) द्वारा 2017 की मूल आवेदन संख्या 2919 में पारित तारीख 15 नवम्बर, 2019 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है ।

2.1 आक्षेपित आदेश द्वारा अधिकरण ने याची के मूल आवेदन (जिसे संक्षेप में "ओ. ए." कहा गया है) अर्थात् 2017 की मूल आवेदन संख्या 2919 को इस आधार पर खारिज कर दिया था कि विलम्ब की माफी के लिए पर्याप्त कारण दिए बिना अधिकरण के समक्ष आने में 2164 दिनों का अत्यधिक विलम्ब किया गया है ।

3. श्री लालता प्रसाद, जो याची की ओर से उपस्थित हुए हैं, ने यह कथन किया है कि 2164 दिनों के विलम्ब के लिए कारण/कारणों को प्रकीर्ण आवेदन (जिसे संक्षेप में "एम. ए." कहा गया है) अर्थात् 2017 की प्रकीर्ण आवेदन संख्या 3075 में दिए गए थे जो मूल आवेदन के अधीन प्रस्तुत किए गए थे जिसे अधिकरण द्वारा विचार में नहीं लिया गया था ।

4. हमने अधिकरण के समक्ष याची द्वारा फाइल (अर्थात् 2017 की प्रकीर्ण आवेदन संख्या 3075) विलम्ब की माफी के लिए आवेदन का परिशीलन किया है जो वाद फाइल के पृष्ठ संख्या 30 पर संलग्न है ।

4.1 पूर्वोक्त प्रकीर्ण आवेदन के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि याची ने अधिकरण के समक्ष 2164 दिनों के विलम्ब के संबंध में पैरा 3 और 4 में निम्नलिखित कथन किया है :–

(i) कि सहायक निदेशक द्वारा पारित तारीख 10 अगस्त, 2011 का आदेश, याची के कुटुंब द्वारा प्राप्त किया गया था और याची को इसकी जानकारी एक वर्ष के पश्चात् ही हो पाई थी क्योंकि वह शहर में नहीं था ।

(ii) याची की पत्नी बीमार थी जिसकी देखभाल की जाती थी ।

(iii) तारीख 10 अगस्त, 2021 का आदेश पारित किए जाने

की तारीख से 6-7 माह पश्चात्, उसके मित्रों द्वारा कार्रवाई संस्थित करने की सलाह दी गई थी ।

(iv) यद्यपि याची ने एक काउंसेल नियुक्त कर लिया था किन्तु कई प्रयास करने के बावजूद काउंसेल ने मामले में समुचित कदम नहीं उठाया ।

(v) अंततः, याची के पास वित्तीय साधन नहीं हैं ।

5. अभिलेखों के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि याची के विरुद्ध आरोप अत्यधिक नकद का अवरोधन से संबंधित है ।

5.1 प्रत्यर्थियों ने याची को आरोप पत्र तामील करने और जांच करने के पश्चात् तारीख 31 मार्च, 2005 को सेवा से उसे पदच्युत कर दिया था ।

5.2 याची ने अपील प्राधिकारी के समक्ष उक्त पदच्युति आदेश अर्थात् तारीख 31 मार्च, 2005 के आदेश के विरुद्ध एक अपील प्रस्तुत की थी । तथापि, अपील प्राधिकारी ने परिशीलन नहीं किया और परिणामतः, अपील तारीख 3 अप्रैल, 2006 को खारिज हो गई थी ।

5.3 इसके पश्चात्, याची ने अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल किया । अधिकरण ने तारीख 20 अगस्त, 2008 को याची के मूल आवेदन (अर्थात् 2007 की मूल आवेदन संख्या 1170) को खारिज कर दिया ।

5.4 यह प्रतीत होता है कि इसके पश्चात्, याची ने पदच्युति आदेश के बारे में तारीख 29 दिसम्बर, 2008 को एक पुनरीक्षण आवेदन प्रस्तुत किया था जिसे सहायक महानिदेशक, डाक विभाग (जीडीएस अनुभाग), संसूचना और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा तारीख 10 अगस्त, 2011 को खारिज कर दिया गया था । इस आदेश के विरुद्ध याची ने पुनः वर्ष 2017 में, 2017 की मूल आवेदन संख्या 2919 के माध्यम से अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल किया जिसे तारीख 15 नवम्बर, 2019 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया ।

6. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह कथन किया है कि विलम्ब की माफी के लिए आवेदन के समर्थन में एक चिकित्सीय रिपोर्ट याची की ओर से फाइल प्रत्युत्तर के साथ संलग्न की गई थी ।

6.1 लापरवाही जो इस मामले में याची द्वारा की गई है, जिस तथ्य से प्रकट होती है अर्थात् चिकित्सीय रिपोर्ट जिसे इसमें उपर्युक्त उल्लिखित किया गया है, हमारे समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई है ।

7. किसी दशा में, हमें अधिकरण के समक्ष विलम्ब की माफी के लिए उसके आवेदन में याची द्वारा कथित कारणों की परीक्षा करनी है ।

7.1 याची द्वारा दिए गए कारणों में से कोई भी कारण, अधिकरण के समक्ष आने में 2164 दिनों के विलम्ब का पर्याप्त रूप से सही स्पष्टीकरण नहीं करती है, घटनाओं के वर्णन से यह दर्शित होता है कि प्रत्येक प्रक्रम पर याची ने टालमटोल की है । इसलिए, यदि एक बार यह मान भी लिया जाए कि विलम्ब का कारण उसकी पत्नी की बीमारी थी, तो भी यह विलम्ब का बहुत बड़ा कारण नहीं हो सकता है ।

8. इसलिए, पूर्ववर्ती चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, हम अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण (कारणों) नहीं पाते हैं ।

9. तद्नुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

क.

महावीर इंटरनेशनल एपेक्स

बनाम

महावीर इंटरनेशनल एसोसिएशन

(2021 की एकल सिविल रिट याचिका सं. 10544)

तारीख 5 अक्तूबर, 2021

न्यायमूर्ति दिनेश मेहता

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित राजस्थान किराया नियंत्रण अधिनियम, 2001 की धारा 9 और 18] – भू-स्वामी द्वारा संपत्ति पट्टे पर दिया जाना – पट्टे की अवधि समाप्त होना – भू-स्वामी द्वारा पट्टाधृत संपत्ति से किराएदार की बेदखली के लिए किराया अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल किया जाना – अधिकारिता का अभाव – यदि कोई अधिकरण ऐसे मामलों से संबंधित आवेदन ग्रहण कर लेता है जिनके संबंध में उसकी अधिकारिता नहीं है तो उसके द्वारा पारित निर्णय और आदेश कायम रखे जाने योग्य नहीं होगा ।

संक्षेप में, मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने एस-10 जनता कॉलोनी, जयपुर में स्थित संपत्ति को तारीख 1 जनवरी, 2009 से 11 वर्ष के पट्टे पर दी थी । पट्टे की अवधि पूरी होने पर, प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने कब्जा सौंपने के लिए किराएदार याची से अपेक्षा करते हुए, तारीख 4 फरवरी, 2020 को एक नोटिस जारी किया । जब किराएदार (इसमें याची) पट्टांतरण हुई संपत्ति का कब्जा नहीं दिया, तो भू-स्वामी (इसमें प्रत्यर्थी) ने किराया अधिकरण, जयपुर के समक्ष राजस्थान किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 18 के अधीन एक मूल आवेदन फाइल किया, जिसमें पट्टांतरण संपत्ति से याची की बेदखली की ईप्सा करते हुए अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन करते हुए कि पट्टे की अवधि समाप्त हो गई है । याची ने 2001 के अधिनियम की धारा 18 के अधीन तारीख 5 अप्रैल, 2021 को एक आवेदन फाइल किया और

यह दलील दी कि प्रश्नगत याचिका बनाए रखने योग्य नहीं है, क्योंकि जिसके आधार पर प्रत्यर्थी ने बेदखली की मांग की है कि वह आधार 2001, के अधिनियम की धारा 9 या अन्य उपबंधों में उल्लिखित किसी भी आकस्मिकता/आधार में नहीं आती है । अधिकरण के विद्वान् सदस्य ने अपने तारीख 11 अगस्त, 2021 के आदेश के माध्यम से याची के पूर्वोक्त आवेदन को खारिज कर दिया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह मत व्यक्त करते हुए कि आवेदक और गैर-आवेदक के बीच भू-स्वामी और किराएदार का स्पष्ट संबंध विद्यमान है और किराएदार द्वारा यथा-उद्भूत अधिकारिता के विवाद्यक पर, इस प्रक्रम पर निर्णय लिया जाना अपेक्षित नहीं है । न्यायालय द्वारा याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – सुश्री कासलीवाल द्वारा दी गई अग्रिम दलील प्रथम-दृष्ट्या आकर्षित प्रतीत होती है, और यह राय बनाई जाती है कि किराया अधिकरण के पास 2001 के अधिनियम की धारा 9 के खंड (क) से (ङ) में उल्लिखित आकस्मिकताओं में ही बेदखली का आदेश देने की अधिकारिता है और यदि कोई अन्य आधार है जिसके लिए बेदखली की ईप्सा की गई है, भू-स्वामी को सिविल न्यायालय को समावेदन करना होगा । किन्तु 2001 के अधिनियम की धारा 9 और 18 की सूक्ष्मता और संयुक्त रूप से परिशीलन करने से ऐसी भ्रांतिपूर्ण अवधारणा और अन्य सुझाव खण्डित हो जाते हैं । 2001 के अधिनियम की धारा 9, जो सर्वोपरि खण्ड के साथ आरम्भ होती है, में ऐसी कोई संदिग्ध निबंधन उपबंधित नहीं करती है किसी भी बात के अध्यधीन, यदि 2001 के अधिनियम की धारा 9 के उपबंध लागू होते हैं, तो किराया अधिकरण, किराएदार को बेदखल करने का आदेश नहीं देगा, जब तक कि वह 2001 के अधिनियम की धारा 9 के खंड (क) से (ङ) में आकस्मिकताओं/स्थितियों की उपस्थिति का समाधान अभिलिखित नहीं करता है । किन्तु उसके बाद, अधिनियम की धारा 9 किराया अधिकरण की शक्तियों का मात्र समूह नहीं रह जाता है । ऐसे अन्य उपबंध हैं जो किराया अधिकरणों की शक्तियों या अधिकारिता परिलक्षित करते हैं ।

2001 के अधिनियम की धारा 18 इस प्रकार है कि यह भू-स्वामी और किराएदार के बीच विवादों का निपटारा करने के लिए सिविल न्यायालय पर पूर्ण प्रतिबंध लगाता है, इसी प्रकार यह अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण को उनके बीच सभी विवादों और उससे संबंधित मामलों और आनुवंशिक मामलों का विचारण करने की अधिकारिता प्रदत्त करता है । ऐसी प्रास्थिति होने के कारण, 2001 के अधिनियम की प्रयोज्यता, उन याचिकाओं को निर्बंधित करना नहीं कहा जा सकता जो 2001 के अधिनियम के अध्याय II और III के अधीन फाइल की गई हैं । भू-स्वामी और किराएदार या किसी अन्य आनुषंगिक विवादों से संबंधित सभी मामलों का 2001 के अधिनियम के अधीन विचारण किया जाना अपेक्षित है । 2001 के अधिनियम की धारा 18 की उपधारा (3) को ध्यानपूर्वक परिशीलन करने से थोड़ा सा भी संदेह दूर हो जाता है, क्योंकि यह स्पष्ट रूप से उपबंध करता है कि जब परिसरों या किराएदारी के संबंध में कब्जे की वसूली के लिए याचिका फाइल की जाती है, जिसमें 2001 के अधिनियम के अध्याय II और IV लागू नहीं होती है, तो अधिनियम 2001 की धारा 18 के अधीन विहित समय अनुसूची और प्रक्रिया लागू होगी । अतएव, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कब्जे की वसूली के लिए याचिका किसी अन्य परिसर या किराएदारी के मामले में फाइल की जा सकती है, जो 2001 के अधिनियम के अध्याय II और IV द्वारा शासित नहीं होती है । यदि विधानमंडल का आशय किराया अधिकरण के अधिकारिता को केवल 2001 के अधिनियम की धारा 9 के खंड (क) से (ङ) द्वारा शासित मामलों तक सीमित करना था, तो उसके बाद 2001 के अधिनियम की धारा 18 में उपधारा (3) को अंत:स्थापित करने का कोई अवसर नहीं था । वर्तमान मामले में, चूंकि पट्टा 11 वर्ष की अवधि के लिए था, यह अधिनियम की धारा 8 द्वारा शासित नहीं होती है, अतएव, 2001 के अधिनियम के अध्याय II और III लागू होते हैं । पूर्ववर्ती चर्चा के परिणामस्वरूप, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि सिविल न्यायालयों की अधिकारिता किसी भी मामले पर विचार करने की है किन्तु याची और प्रत्यर्थी के बीच मामले या विवाद

के लिए विचारण और विनिश्चय एकमात्र किराया अधिकरण द्वारा ही किया जाना आपेक्षित है । (पैरा 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2012] एकलपीठ सिविल रिट याचिका 8654/2012 :
रायसा बानो बनाम **इनायत अली** ; 10

[2009] ए. आई. आर. 2009 जिल्द 96 (राजस्थान) 94 :
ज्ञानेश्वर भाटी बनाम **बालू राम और अन्य** ; 10

[2004] एकलपीठ सिविल रिट याचिका 3076/2004 :
नलिनी मेहता बनाम **भारतीय स्टेट बैंक** । 10

सिविल रिट अधिकारिता : 2021 की एकल सिविल रिट याचिका सं. 10544.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से सुश्री सुकृति कासलीवाल

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री सुरेश कुमार साहनी, राम मोहन शर्मा और मनेन्द्र सिंह सोलंकी

न्यायमूर्ति दिनेश मेहता – वर्तमान रिट याचिका में जयपुर के पीठासीन अधिकारी, किराया अधिकरण सं. 2, जयपुर महानगर (जिसे इसमें इसके पश्चात् "किराया अधिकरण" कहा गया है) द्वारा पारित तारीख 11 अगस्त, 2021 के आदेश को चुनौती दी गई है ।

2. तथ्य बहुत ही संक्षिप्त हैं : जो इसमें इस प्रकार उद्धृत हैं :–

(i) प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने एस-10 जनता कॉलोनी, जयपुर (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'पट्टांतरण संपत्ति' कहा गया है) में स्थित संपत्ति में तारीख 1 जनवरी, 2009 से 11 वर्ष के पट्टे पर दी थी ।

(ii) पट्टे की अवधि पूरी होने पर, प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने कब्जा

सौंपने के लिए किराएदार याची से अपेक्षा करते हुए, तारीख 4 फरवरी, 2020 को एक नोटिस जारी किया ।

(iii) जब किराएदार (इसमें याची) पट्टांतरण हुई संपत्ति का कब्जा नहीं दिया, तो भू-स्वामी (इसमें प्रत्यर्थी) ने किराया अधिकरण, जयपुर के समक्ष राजस्थान किराया नियंत्रण अधिनियम, 2001 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "2001 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 8 के अधीन एक मूल आवेदन फाइल किया, जिसमें पट्टांतरण संपत्ति से याची की बेदखली की ईप्सा अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन करते हुए कि पट्टे की अवधि समाप्त हो गई है ।

(iv) याची ने 2001 के अधिनियम की धारा 18 के अधीन तारीख 5 अप्रैल, 2021 को एक आवेदन फाइल किया और यह दलील दी कि प्रश्नगत याचिका बनाए रखने योग्य नहीं है, क्योंकि जिसके आधार पर प्रत्यर्थी ने बेदखली की मांग की है कि वह आधार 2001 के अधिनियम की धारा 9 या अन्य उपबंधों में उल्लिखित किसी भी आकस्मिकता/आधार में नहीं आता है ।

(v) अधिकरण के विद्वान् सदस्य ने अपने तारीख 11 अगस्त, 2021 के आदेश के माध्यम से याची के पूर्वोक्त आवेदन को खारिज कर दिया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह मत व्यक्त करते हुए कि आवेदक और गैर-आवेदक के बीच भू-स्वामी और किराएदार का स्पष्ट संबंध विद्यमान है और किराएदार द्वारा यथा-उद्भूत अधिकारिता के विवाद्यक पर, इस प्रक्रम पर निर्णय लिया जाना अपेक्षित नहीं है ।

3. तारीख 11 अगस्त, 2021 के आदेश को आक्षेपित करते हुए, याची के विद्वान् काउंसेल सुश्री कासलीवाल ने बलपूर्वक दलील दी है कि किराया अधिकरण ने याची के आवेदन को खारिज करके त्रुटि की है जिसने अधिकारिता का मौलिक प्रश्न उद्भूत किया है ।

4. उसने यह दलील दी है कि किराया अधिकरण के लिए यह

अपेक्षित था कि वह याची के आवेदन पर उसके गुणागुण के आधार पर निर्णय करता, जिसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है, क्योंकि यह पाया गया कि मूल आवेदन को एकमात्र अधिकारिता के आधार पर नामंजूर कर दिया गया है । उसने दलील दी कि अधिकरण द्वारा अधिकारिता के प्रश्न पर मत व्यक्त करने से इनकार करना विधिक रूप से न्यायोचित नहीं था यह मत व्यक्त करते हुए कि इस प्रक्रम पर निर्णय किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

5. विद्वान् कांउसेल ने यह दलील दी है कि 2001 के अधिनियम की धारा 9, जो गैर-बाध्यकारी खंड से आरंभ होती है, बहुत स्पष्ट है और तद्नुसार, किराया अधिकरण किराएदार को बेदखल करने का आदेश नहीं दे सकता है जब तक कि अपना यह समाधान अभिलिखित नहीं किया हो कि भू-स्वामी द्वारा फाइल किया गया मामला, 2001 के अधिनियम की धारा 9 के खंड (क) से (ड़) में उल्लिखित आकस्मिकताओं के भीतर आता है ।

6. उसने 2001 के अधिनियम की धारा 9 की सभी खंडों को यह इंगित करने के लिए परिशीलन किया कि जिस आधार पर प्रत्यर्थी भू-स्वामी ने बेदखली याचिका फाइल की, वह 2001 के अधिनियम की धारा 9, में उल्लिखित किसी भी आकस्मिकता/आधार में नहीं आता है, उसमें यह भी जोड़ा कि यह 2001 के अधिनियम के किसी भी उपबंध में नहीं आता है और इसलिए, याचिका किराया न्यायाधिकरण के समक्ष नहीं प्रस्तुत की जा सकती है । उसने यह निवेदन किया कि प्रत्यर्थी भू-स्वामी, यदि सलाह माने तो सिविल न्यायालय के समक्ष वाद कायम रखा जा सकता है ।

7. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री साहनी ने प्रबलतापूर्वक यह दलील दी है कि याचिका में उद्भूत विवादों का विधि की दृष्टि में कोई सार नहीं है और मात्र इसे बेदखली कार्यवाहियों को आगे बढ़ाने से रोकने के उद्देश्य से उदभूत किया गया है ।

8. 2001 के अधिनियम की धारा 18 की ओर न्यायालय का ध्यान

आकर्षित करते हुए, विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि सिविल न्यायालयों के अधिकारिता का अर्थात् स्पष्ट और पूर्ण अपवर्णित है, इसलिए, भू-स्वामी और किराएदार के बीच किसी वाद का विचारण सिविल न्यायालय द्वारा ही किया जा सकता है ।

9. उसने यह दलील दी है कि यह सत्य है कि प्रत्यर्थी का मामला 2001 के अधिनियम की धारा 9 में उल्लिखित किसी भी आकस्मिकताओं में नहीं आता है, किन्तु 2001 के अधिनियम की धारा 18 के परंतुक में स्पष्ट रूप से अनुध्यात है कि जिन मामलों में अध्याय II और III लागू नहीं होते हैं, उन मामलों में, अधिकरण संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 के उपबंधों का उचित सम्मान करेगा और भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 या इस प्रश्न को प्रभावित करने वाली कोई अन्य ठोस विधि, किराया अधिकरण को अधिकारिता प्रदान नहीं कर सकती है ।

10. अपने इस तर्क को बल देने के लिए कि पट्टे की समाप्ति या पट्टे के अवधारण के आधार पर बेदखली की मांग करने वाली याचिका का विचारण किराया अधिकरण और एकमात्र किराया अधिकरण द्वारा किया जा सकता है, उन्होंने इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों को उद्धृत किया है –

(i) **नलिनी मेहता** बनाम **भारतीय स्टेट बैंक**[1]

(ii) **रायसा बानो** बनाम **इनायत अली**[2] और

(iii) **ज्ञानेश्वर भाटी** बनाम **बाबू राम और अन्य**[3]

11. सुना गया ।

12. 2001 के अधिनियम की धारा 9 के उप-खंडों (क) से (ङ) को पुनः प्रस्तुत करने से बचते हुए, वर्तमान संदर्भ के लिए, 2001 के

---

[1] एकलपीठ सिविल रिट याचिका 3076/2004.

[2] एकलपीठ सिविल रिट याचिका 8654/2012.

[3] ए. आई. आर. 2009 जिल्द 96 (राजस्थान) 94.

अधिनियम की धारा 9 केवल सुसंगत भाग को पुन: प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा :–

> "किसी अन्य विधि या संविदा में अंतर्वलित किसी भी बात के होते हुए किन्तु इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अध्यधीन, किराया अधिकरण किराएदार को बेदखल करने का आदेश नहीं देगा जब तक कि उसका यह समाधान न हो जाए ।"

13. 2001 के अधिनियम की धारा 18 पुनः प्रस्तुत करना भी संदर्भ से बाहर नहीं होगा :–

> "किराया अधिकरण का अधिकारिता – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में निहित किसी बात के होते हुए, उन क्षेत्रों में जहां यह अधिनियम लागू है, मात्र किराया अधिकरण और न कि सिविल न्यायालय के पास इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन फाइल भू-स्वामी और किराएदार के बीच विवादों से संबंधित याचिकाओं और उससे संबंधित और उसके आनुषंगिक मामलों को सुनने और निर्णय करने की अधिकारिता होगी :
>
> परन्तु किराया अधिकरण ऐसी याचिकाओं विनिश्चय करते हुए, जिनमें इस अधिनियम के अध्याय II और III में अंतर्वलित उपबंध लागू नहीं हैं का विनिश्चय करते समय संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का अधिनियम सं. 4), भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का अधिनियम सं. 9) या ऐसे मामले पर लागू किसी अन्य सारवान् विधि के उपबंधों का उसी रीति से सम्मान करेगा, जिस रीति से ऐसी विधि लागू की गई वाद के माध्यम से सिविल न्यायालय के समक्ष विवाद लाया गया था । परन्तु यह भी कि इस अधिनियम में अंतर्वलित कोई चीज किराया अधिकरण को भू-स्वामी और किराएदार के बीच ऐसे विवादों से संबंधित याचिका को ग्रहण करने के लिए सशक्त समझा जाएगा, जिसके उपबंध पर राजस्थान लोक परिसर (अनधिकृत कब्जाधारियों

की बेदखली) अधिनियम, 1964 (1965 का अधिनियम सं. 2) और राजस्थान परिसर (मांग और बेदखली) अध्यादेश, 1949 में लागू होते हैं ।

(2) जहां केवल असंदत्त किराया या बकाया राशि की वसूली के लिए याचिका फाइल की जाती है, वहां धारा 14 में उल्लिखित समय अनुसूची और प्रक्रिया, ऐसी याचिका पर यथावश्यक परिवर्तन सहित लागू होगी ।

(3) जहां कब्जे की वसूली के लिए याचिका उन परिसरों या किराएदारी के संबंध में फाइल की जाती है जिसमें इस अधिनियम के अध्याय II और III के उपबंध लागू नहीं होते हैं, वहां धारा 15 में उल्लिखित समय अनुसूची और प्रक्रिया ऐसी याचिका पर यथावश्यक परिवर्तन सहित लागू होगी ।

(4) याचिका उस किराया अधिकरण के समक्ष फाइल की जाएगी जिसकी स्थानीय सीमाओं के भीतर जिसकी अधिकारिता में परिसर स्थित है ।

14. सुश्री कासलीवाल द्वारा दी गई अग्रिम दलील प्रथमदृष्ट्या आकर्षित प्रतीत होती है, और यह राय बनाई जाती है कि किराया अधिकरण के पास 2001 के अधिनियम की धारा 9 के खंड (क) से (ड़) में उल्लिखित आकस्मिकताओं में ही बेदखली का आदेश देने की अधिकारिता है और यदि कोई अन्य आधार है जिसके लिए बेदखली की ईप्सा की गई है, भू-स्वामी को सिविल न्यायालय को समावेदन करना होगा ।

15. किन्तु 2001 के अधिनियम की धारा 9 और 18 की सूक्ष्मता और संयुक्त रूप से परिशीलन करने से ऐसी भ्रांतिपूर्ण अवधारणा और अन्य सुझाव खण्डित हो जाते हैं ।

16. 2001 के अधिनियम की धारा 9, जो सर्वोपरि खण्ड के साथ आरम्भ होती है, में ऐसी कोई संदिग्ध निबंधन उपबंधित नहीं करती है

किसी भी बात के अध्यधीन, यदि 2001 के अधिनियम की धारा 9 के उपबंध लागू होते हैं, तो किराया अधिकरण, किराएदार को बेदखल करने का आदेश नहीं देगा, जब तक कि वह 2001 के अधिनियम की धारा 9 के खंड (क) से (ङ) में आकस्मिकताओं/स्थितियों की उपस्थिति का समाधान अभिलिखित नहीं करता है ।

17. किन्तु उसके बाद, अधिनियम की धारा 9 किराया अधिकरण की शक्तियों का मात्र समूह नहीं रह जाता है । ऐसे अन्य उपबंध हैं जो किराया अधिकरणों की शक्तियों या अधिकारिता परिलक्षित करते हैं ।

18. 2001 के अधिनियम की धारा 18 इस प्रकार है कि यह भू-स्वामी और किराएदार के बीच विवादों का निपटारा करने के लिए सिविल न्यायालय पर पूर्ण प्रतिबंध लगाता है, इसी प्रकार यह अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण को उनके बीच सभी विवादों और उससे संबंधित मामलों और आनुवंशिक मामलों का विचारण करने की अधिकारिता प्रदत्त करता है ।

19. ऐसी प्रास्थिति होने के कारण, 2001 के अधिनियम की प्रयोज्यता, उन याचिकाओं को निर्बंधित करना नहीं कहा जा सकता जो 2001 के अधिनियम के अध्याय II और III के अधीन फाइल की गई हैं । भू-स्वामी और किराएदार या किसी अन्य आनुषंगिक विवादों से संबंधित सभी मामलों का 2001 के अधिनियम के अधीन विचारण किया जाना अपेक्षित है ।

20. 2001 के अधिनियम की धारा 18 की उपधारा (3) को ध्यानपूर्वक परिशीलन करने से थोड़ा सा भी संदेह दूर हो जाता है, क्योंकि यह स्पष्ट रूप से उपबंध करता है कि जब परिसरों या किराएदारी के संबंध में कब्जे की वसूली के लिए याचिका फाइल की जाती है, जिसमें 2001 के अधिनियम के अध्याय II और IV लागू नहीं होती है, तो अधिनियम 2001 की धारा 18 के अधीन विहित समय अनुसूची और प्रक्रिया लागू होगी । अतएव, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कब्जे की वसूली के लिए याचिका किसी अन्य परिसर या किराएदारी के

मामले में फाइल की जा सकती है, जो 2001 के अधिनियम के अध्याय II और IV द्वारा शासित नहीं होती है ।

21. यदि विधानमंडल का आशय किराया अधिकरण के अधिकारिता को केवल 2001 के अधिनियम की धारा 9 के खंड (क) से (ङ) द्वारा शासित मामलों तक सीमित करना था, तो उसके बाद 2001 के अधिनियम की धारा 18 में उपधारा (3) को अंत:स्थापित करने का कोई अवसर नहीं था ।

22. वर्तमान मामले में, चूंकि पट्टा 11 वर्ष की अवधि के लिए था, यह अधिनियम की धारा 8 द्वारा शासित नहीं होती है, अतएव, 2001 के अधिनियम के अध्याय II और III लागू होते हैं ।

23. पूर्ववर्ती चर्चा के परिणामस्वरूप, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि सिविल न्यायालयों की अधिकारिता किसी भी मामले पर विचार करने की है किन्तु याची और प्रत्यर्थी के बीच मामले या विवाद के लिए विचारण और विनिश्चय एकमात्र किराया अधिकरण द्वारा ही किया जाना आपेक्षित है ।

24. मेरे पूर्वोक्त दृष्टिकोण को निम्नलिखित निर्णयों द्वारा अभिपुष्ट किया गया है, जिसके सुसंगत भाग इसमें इसके पश्चात् पुर:स्थापित किए गए हैं :

नलिनी मेहता बनाम **भारतीय स्टेट बैंक** (उपर्युक्त) :

> 12. प्रतिद्वंदी दलीलों पर एक विचारशील और चिंतित विचार करने और 2001 के अधिनियम की योजना की जांच करने के बाद इस न्यायालय का स्पष्ट रूप से यह मत है कि आक्षेपित आदेश विधि के साधारण उपबंधों की पूरी तरह से गलत निर्वचन पर कार्यवाही करता है और इसे बनाए नहीं रखा जा सकता ।
>
> 13. राजस्थान किराया नियंत्रण अधिनियम, 2001 राजस्थान राज्य में कतिपय परिसरों और उनके आनुषंगिक मामलों को किराए के लिए देने से बेदखली के नियंत्रण का उपबंध करता है ।

अधिनियम को शीर्षकों के अधीन सात अध्यायों में विभाजित किया गया है (1) प्रांरभिक, (2) किराए में संशोधन, (3) किराएदारी, (4) अवैध रूप से बेदखल किराएदार के कब्जे की बहाली और उसकी प्रक्रिया, (5) अधिकरणों का गठन, किराए में संशोधन और बेदखली और निष्पादन की प्रक्रिया, (6) सुविधाएं (7) प्रकीर्ण । अधिनियम की धारा 1 स्पष्ट रूप से यह उपबंध करती है कि सर्वप्रथम उन नगरपालिका क्षेत्रों पर लागू होता है जिन राज्यों में जिला मुख्यालय शामिल हैं और बाद में 1991 की जनगणना के अनुसार 50,000 से अधिक जनसंख्या वाले अन्य नगरपालिका क्षेत्रों पर भी लागू होता है जैसा कि राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करेगी । धारा 1 की उपधारा (3) में यह उपबंध है कि यह अधिनियम उस तारीख से लागू होगा जो राज्य सरकार द्वारा शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियुक्त की जाए । राज्य सरकार ने अप्रैल, 2003 के प्रथम दिन को यह अधिनियम लागू करने की तारीख के रूप में नियत किया है और यह उन सभी नगरपालिका क्षेत्रों में लागू होगा जिनमें जिला मुख्यालय सम्मिलित हैं ।

14. प्रश्नगत परिसर उदयपुर में स्थित है और इस पर कोई विवाद नहीं है कि यह नगरपालिका क्षेत्र है जिसमें जिला मुख्यालय शामिल है । इसलिए 2001 का अधिनियम सीधे प्रश्नगत क्षेत्र तक विस्तारित है ।

15. अधिनियम के अध्याय II और III, जिसमें धारा 6 से 10 शामिल हैं, जो विद्यमान किराएदारों के संबंध में किराए में संशोधन (धारा 6), नए किराएदारों के संबंध में किराए में संशोधन (धारा 7), किराएदारी की सीमित अवधि (धारा 8), किराएदारों की बेदखली (धारा 9) और कुछ मामलों में तत्काल कब्जा पाने के लिए भू-स्वामी के अधिकार (धारा 10) से संबंधित है, ऐसे उपबंध जिन्हें अधिनियम की धारा 3 के अधीन कुछ परिसरों और किराएदारों के संबंध में स्पष्ट रूप से बाहर रखा गया है । इस बात पर भी कोई

विवाद नहीं है कि प्रश्गत परिसर उदयपुर के डिविजनल मुख्यालय सहित नगरपालिका में एक स्थान पर स्थित है और उन्हें 39,610/- रुपए के मासिक किराए पर दिया गया है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि आवासीय प्रयोजन के लिए उन्हें किराए पर नहीं दिया गया है । तथापि, प्रश्नगत परिसर के भारतीय स्टेट बैंक को किराए पर दिया गया है और यह स्पष्ट रूप से धारा 3 (X) के उपबंधों के आधार पर, अधिनियम के अध्याय II और III परिसर और प्रश्नगत किराएदार को लागू नहीं होते हैं ।

16. अधिनियम की धारा 18 (अध्याय V में अंतर्वलित), जो अधिकरण के अधिकार क्षेत्र से संबंधित है, इस प्रकार उपबंध करती है – 18 किराया अधिकरण का अधिकार क्षेत्र – (1) इस समय लागू किसी अन्य विधि में निहित किसी बात के होते हुए भी, उन क्षेत्रों में, जिन पर यह अधिनियम कुछ समय के लिए लागू है, भू-स्वामी और किराएदार के मध्य विवादों और उससे संबंधित मामलों तथा उनसे संबंधित विषयों और उनसे सहायक याचिकाओं को सुनने और निर्णय लेने का अधिकार केवल किराया अधिकरण और किसी सिविल न्यायालय को नहीं होगा, इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन फाइल बशर्ते कि किराया अधिकरण ऐसी याचिकाओं पर निर्णय लेते समय, जिन पर इस अधिनियम के अध्याय II और III में निहित उपबंध लागू नहीं होते हैं, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का अधिनियम सं. 4), भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का अधिनियम सं. 9) के उपबंध का सम्मान करेगा या ऐसे मामलों पर लागू होने वाला कोई अन्य मूल विधि उसी प्रकार से लागू होता जिस प्रकार से ऐसी विधि लागू की जाती यदि विवाद को वाद के माध्यम से सिविल न्यायालय को समक्ष लाया गया होता । यह भी उपबंध किया गया है कि इस अधिनियम में निहित कुछ भी किराया अधिकरण को भू-स्वामी और किराएदार को बीच ऐसे विवाद से संबंधित याचिका पर विचार करने का अधिकार देने वाला नहीं समझा जाएगा, जिस पर राजस्थान लोक परिसर

(अनधिकृत कब्जाधारियों की बेदखली) अधिनियम, 1964 (1965 का अधिनियम सं. 2) और राजस्थान परिसर (मांग और बेदखली) अध्यादेश, 1949 के उपबंध लागू होते हैं ।

(2) जहां केवल असंदत्त किराए की बकाया राशि की वसूली के लिए याचिका फाइल की जाती है तो धारा 14 में यथा आवश्यक परिवर्तन सहित समय अनुसूची और प्रक्रिया ऐसी याचिका पर लागू होगी ।

(3) जहां कब्जा पाने के लिए याचिका उन परिसरों या किराएदारों के संबंध में फाइल की गई है, जिन पर इस अधिनियम के अध्याय II और III के उपबंध लागू नहीं होते हैं, धारा 15 में यथा आवश्यक परिवर्तन सहित समय अनुसूची और प्रक्रिया ऐसी याचिका पर लागू होगी ।

(4) किराया अधिरकरण के समक्ष एक याचिका फाइल की जाएगी जिसके अधिकार क्षेत्र में परिसर स्थित है ।

17. अधिनियम की धारा 29 (अध्याय VII में निहित) इस अधिनियम के उपबंधों के अभिभावी प्रभाव का उपबंध करती है और निम्नानुसार पढ़ती है,- अभिभावी प्रभाव डालने के लिए कार्य करें । इस अधिनियम के उपबंध इस समय लागू किसी अन्य विधि में या इस अधिनियम के अतिरिक्त किसी अन्य विधि के आधार पर प्रभावी होने वाले किसी लिखत में असंगत किसी भी बात के बावजूद प्रभावी होंगे ।

18. इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि धारा 1 की उपधारा (3) में अधिसूचित तारीख, से राजस्थान परिसर [(किराया और बेदखली पर नियंत्रण) अधिनियम, 1950] 2001 के अधिनियम की धारा 32 के आधार पर निरस्त हो जाता है ।

(ii) रायसा बानो बनाम **इनायत अली** (उपर्युक्त)

"5. बशर्ते, अधिनियम के अध्याय II और III वर्तमान मामले

में भू-स्वामी और किराएदार पर लागू नहीं होते हैं । अधिनियम की धारा 18 (1) के परंतुक की आवश्यकता केवल यह अधिदेशित की धारा करने के लिए है कि किराया अधिकरण ऐसे मामलों में संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1872 और भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 या किसी अन्य मूल विधि के उपबंधों का उसी रीति से यथोचित ध्यान रखेगा, जिस रीति से ऐसी विधि लागू की गई होगी । क्या विवाद को वाद के माध्यम से सिविल न्यायालय के समक्ष लाया जा रहा था ? धारा 18(1) अन्यथा एक गैर-बाध्यकारी खंड से शुरू होता है, जिसमें सिविल न्यायालयों की अधिकारिता शामिल नहीं है और विशेष कानून, अर्थात् राजस्थान किराया नियंत्रण अधिनियम, 2001 के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों की सुनवाई केवल विशेष रूप से गठित किराया अधिकरणों में करने का अधिकार है ।

5.1 इसलिए, 2001 के अधिनियम की उक्त परंतुक और मुख्य धारा 18(1) में भू-स्वामी और किराएदार के बीच विवादों को शामिल किया गया है, जिसमें आकस्मिक मामले और यहां तक कि उससे जुड़े मामले भी शामिल हैं । यदि विवाद की जड़ में इस अधिनियम में परिभाषित भू-स्वामी और किराएदार होने के रूप में पार्टियों के बीच संबंध हैं, वे सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के बाहर रखा गया है और विशेष अधिकार क्षेत्र इस विधि के अधीन गठित किराया अधिकरणों में निहित है । याचिकाकर्ता के विद्वान् काउंसेल द्वारा अपनी दलीलों के समर्थन में धारा 18(1) के परंतुक का संदर्भ कि चूंकि मामला भारतीय अनुबंध अधिनियम के तहत आता है, इसलिए, किराया अधिकरण के ऐसे अधिकार क्षेत्र को बाहर रखा जाना चाहिए, गलत है । परंतुक में केवल यह कहा गया है कि भू-स्वामी और किराएदार के बीच राजस्थान किराया नियंत्रण अधिनियम, 2001 के तहत उत्पन्न विवाद से निपटने के दौरान किराया अधिकरण इन अधिनियमों का भी उचित ध्यान रखेगा और इससे संबंधित आकस्मिक और सहायक मामलों को भी सिविल

न्यायालयों के बहिष्करण के लिए किराया अधिकरण के अधिकार क्षेत्र में शामिल किया गया है ।

6. वर्तमान मामलें में, माना जाता है कि विवाद वाद परिसर के किराएदार द्वारा की गई मरम्मत के बारे में है और इसलिए भू-स्वामी और किराएदार के संबंध को स्वीकार किया जाता है । किराया समझौते के तहत किराएदार द्वारा कथित तौर पर की गई इस तरह की मरम्मत पर और इस तरह उसे भू-स्वामी से ऐसी मरम्मत की लागत का दावा करने का अधिकार देना, किराया न्यायाधिकरण के समक्ष फाइल वर्तमान आवेदन में एक विवाद है । याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी के बीच भू-स्वामी और किराएदार के स्वीकृत संबंधों को देखते हुए, सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को 2001 के अधिनियम की धारा 18(1) के अधीन स्पष्ट रूप से बाहर रखा गया है । यह विवाद भू-स्वामी और किराएदार के संबंधों के लिए आवश्यक रूप से आकस्मिक और सहायक होने के नाते, विद्वान् किराया अधिकरण ने तारीख 5.3.2012 के आक्षेपित आदेश को पारित करके अधिकार क्षेत्र के मुद्दे पर सही निर्णय किया है, जिसमें कहा गया है कि इस तरह के आवेदन या वाद पर निर्णय करने का अधिकार उसके पास है ।

(iii) ज्ञानेश्वर भाटी बनाम **बाबू राम** (उपर्युक्त)

"15 तथापि, विद्वान् काउंसेलों को विस्तार से सुनने और विद्वान् विचारण न्यायालय के आक्षेपित आदेश और बार में उद्धृत निर्णयों के अवलोकन पर, इस न्यायालय की यह राय है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थीगण द्वारा फाइल आदेश 7, नियम 11 सी.पी.सी. के अधीन आवेदन को अपास्त करके गलती की है । वास्तव में, प्रत्यर्थी सं. 4 वर्तमान याचिकाकर्ता द्वारा अपने आवेदन में उठाई गई दलील, जिन्हें आक्षेपित आदेश के पृष्ठ 3 और 4 पर पैरा 1 में पुन: प्रस्तुत किया गया है, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा बिल्कुल भी पूरा नहीं किया गया है,

लेकिन अन्य प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 द्वारा फाइल आदेश 7, नियम 11 सी.पी.सी. के फाइल आवेदन पर वादी द्वारा फाइल उत्तर पर चर्चा करते हुए उनके खिलाफ निष्कर्ष वापस कर दिए गए हैं अर्थात् श्री घांची महासभा अपने अध्यक्ष और सचिव के माध्यम से । उक्त उत्तर पर नीचे विद्वान् विचारण न्यायालय के आदेश के पृष्ठ 8 पर पैरा 2 में चर्चा की गई थी । निचले न्यायालय ने पैरा 5 में एक ओर कहा कि 13.4.2008 के संकल्प के तहत घांची महासभा की आम सभा ने प्रत्यर्थी सं. 4 को 11,61,000/- रुपए और 7,000/- रुपए प्रतिमाह की नीलामी राशइ के लिए परिसर को छोड़ दिया था, अपने निष्कर्ष को जोड़ने में जल्दबाजी की कि श्री घांची महासभा की आम सभा वाद संपत्ति की स्वामी नहीं थी । इस न्यायालय की राय में, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष देने का कोई आधार नहीं था । दूसरी बात यह है कि आदेश के पृष्ठ 7 पर पैरा 3 (क) में, विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष दिया है कि प्रत्यर्थी सं. 4 और वादी के बीच भू-स्वामी और किराएदार का कोई संबंध नहीं था । स्पष्ट रूप से ऐसा नहीं था क्योंकि यह श्री घांची महासभा की आम सभा के लिए था जिसने 13.4.2008 को आयोजित एक खुली नीलामी पर, जिसमें वादी में से एक ने स्वयं भाग लिया था, वाद परिसर प्रत्यर्थी सं. 4 को देने का निर्णय किया वर्तमान याचिकाकर्ता एक किराएदार के रूप में । एक बार श्री घांची महासभा और वर्तमान याचिकाकर्ता के बीच किराएदार और भू-स्वामी का संबंध प्रथमदृष्ट्या स्थापित हो जाने के बाद, कोई भी वाद जो प्रत्यर्थी सं. 4 को बाहर करने का प्रभाव रखता है, जिसे सामान्य निकाय के उक्त, संकल्प के तहत कब्जे में रखा गया था, वह राजस्थान किराया नियंत्रण अधिनियम, 2001 की धारा 18 में उपयोग किए जाने वाले "उससे संबंधित मामलों और उससे सहायक" शब्दों के अंतर्गत आएगा । यदि ऐसा नहीं था, तो सोसाइटी का कोई भी असंतुष्ट सदस्य भू-स्वामी और किराएदार के ऐसे स्थापित संबंधों को परेशान कर सकता है, कब्जे

की किसी भी राहत का दावा किए बिना वाद फाइल कर सकता है और इस प्रकार अदालत शुल्क के भुगतान से बच सकता है । यदि वाद फाइल करने का मुख्य लेकिन छिपा हुआ उद्देश्य सामान्य निकाय के संकल्प के माध्यम से कब्जे में रखे गए किराएदार को बेदखल करना है, तो न्यायालय हमेशा इस तरह के पर्दे को हटा सकता है और वाद फाइल करने के वास्तविक उद्देश्य को देख सकता है । किराया नियंत्रण अधिनियम, 2001 की धारा 18 किराएदारी से संबंधित मामलों में किसी भी सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को रोकती है और यहां कर कि सहायक मामलों को किराया अधिकरण द्वारा तय किया जाना चाहिए । संक्षेप में, वर्तमान वादी द्वारा फाइल तारीख 13.4.2008 के संकल्प को रद्द करना था, जो केवल वर्तमान याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी सं. 4 के पक्ष में किराएदारी को समाप्त करने का प्रभाव डाल सकता था । इसलिए, इस तरह का मुकदमा केवल किराया अधिकरण के समक्ष दायर किया जा सकता है ।"

25. इसलिए, रिट याचिका असफल हो जाती है ।

26. तद्नुसार, रोक आवेदन अपास्त किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मही./क.

दीपक कुमार

बनाम

हिमाचल प्रदेश कर्मचारी चयन आयोग और एक अन्य

(2021 की सिविल रिट याचिका सं. 474)

तारीख 14 जनवरी, 2021

न्यायमूर्ति अजय मोहन गोयल

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – रिट याचिका – अनुसूचित जाति संवर्ग के अभ्यर्थी का सामान्य संवर्ग अभ्यर्थी के रूप में चयन – चुनौती – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि कोई अनुसूचित जाति संवर्ग का अभ्यर्थी सामान्य संवर्ग के अभ्यर्थी के लिए अभिप्रेत पद पर अपनी योग्यता से चयनित हुआ है तो उसे इस आधार पर नियुक्ति देने से इनकार नहीं किया जा सकता है कि वह सामान्य संवर्ग का अभ्यर्थी नहीं है क्योंकि उसका चयन गुणागुणों पर और उसकी योग्यता के आधार पर हुआ है जो युक्तियुक्त और तर्कसंगत भी है ।

वर्तमान मामले में, सामान्य संवर्ग पद पर अनुसूचित जाति संवर्ग अभ्यर्थी का चयन हुआ था । वर्तमान रिट याचिका द्वारा उसके चयन को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि वह सामान्य संवर्ग से नहीं आता है, इसलिए उसका चयन अवैध है । उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि वर्तमान याचिका में कोई गुणागुण नहीं है । यह सुस्थिर विधि है कि अनुसूचित जाति संवर्ग से संबंधित व्यक्ति, यदि योग्यता पर सामान्य संवर्ग अभ्यर्थी के मुकाबले बेहतर प्रदर्शन करता है तो उसे सामान्य संवर्ग के लिए अभिप्रेत पद के विरुद्ध नियुक्ति का प्रस्ताव दिया जा सकता है और उसे मात्र अनुसूचित जाति संवर्ग के लिए आरक्षित पद के विरुद्ध पद प्राप्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है । जैसा कि भारत

के माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया है उक्त विधि के पीछे कारण और तर्कसंगतता यह है कि यदि कोई अनुसूचित जाति संवर्ग या अनुसूचित जनजाति संवर्ग से हो सकता है, से संबंधित व्यक्ति, सामान्य संवर्ग अभ्यर्थियों से संबंधित व्यक्तियों के स्तर पर अंक अर्जित करते हुए, स्वयं अपनी योग्यता पर नियोजन प्राप्त करने की स्थिति में है तो ऐसे अभ्यर्थी को सामान्य संवर्ग से संबंधित पद का प्रस्ताव दिया जा सकता है जिससे कि अन्य अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अभ्यर्थियों की उस पद के विरुद्ध नियुक्ति की जा सके जो विशिष्ट संवर्ग के लिए आरक्षित हैं । (पैरा 7)

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2021 की सिविल रिट याचिका सं. 474.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री नवीन के. भारद्वाज, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री राजिन्दर ठाकुर, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति अजय मोहन गोयल – इस रिट याचिका द्वारा याची ने निम्नलिखित अनुतोष के लिए प्रार्थना की है :–

"(i) प्रत्यर्थी सं. 1 को यह निर्देश दिया जाए कि वह प्रश्नगत पद पर नियुक्ति के लिए याची के नाम पर विचार और समर्थन करे ।

(ii) कि परिणाम, तारीख 8 जनवरी, 2021 (उपाबंध पी-5) को अभिखंडित और अपास्त किया जाए, उस सीमा तक कि प्रत्यर्थी सं. 2 को सामान्य वर्ग से क्रमांक सं. 771000045 के अधीन अर्हित दर्शित किया गया है ।"

2. क्योंकि न्यायालय को यह विश्वास नहीं है कि याचिका में कोई गुणागुण है, इसलिए, यह आरम्भ से ही खारिज होने योग्य है ।

3. वर्तमान याचिका का अधिनिर्णयन करने के लिए आवश्यक संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं –

हिमाचल प्रदेश कर्मचारी चयन आयोग, हमीरपुर ने तारीख 28 दिसम्बर, 2019 के विज्ञापन सं. 35-3/2019 के द्वारा कतिपय पदों पर

नियुक्ति के लिए आवेदन आमंत्रित किया था । इसमें वेतनमान रु. 5910-20200+288 जी. पी. में संविदा के आधार पर विद्युत तकनीशियन का पद भी सम्मिलित था । विज्ञापन के निबंधनों में, विद्युत तकनीशियन के 4 पद विज्ञापित थे । 2 पद सामान्य संवर्ग (अनारक्षित) के लिए, 1 पद ई. डब्ल्यू. एस. संवर्ग के लिए और 1 पद अनुसूचित जाति संवर्ग (आरक्षित) के लिए विज्ञापित हुए थे । याची ने सामान्य संवर्ग अभ्यर्थी के रूप में विवादित पद के विरुद्ध नियुक्ति के लिए विचार करने हेतु आवेदन किया था ।

4. याची की शिकायत यह है कि उपाबंध पी-4 द्वारा सामान्य संवर्ग के लिए अभिप्रेत विवादित पद में प्राइवेट प्रत्यर्थी की नियुक्ति की गई, जबकि प्राइवेट प्रत्यर्थी ने अनुसूचित जाति संवर्ग के अधीन विवादित पद के लिए विचार किए जाने हेतु आवेदन किया था ।

5. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया कि क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 2 ने अनुसूचित जाति (बी. पी. एल.) संवर्ग के रूप में अपनी हैसियत में आवेदन किया था, इसलिए, उसे मात्र उन रिक्तियों के विरुद्ध विचार और नियुक्त किया जाना चाहिए, जो यदि कोई अनुसूचित जाति (बी. पी. एल.) संवर्ग के लिए आरक्षित है और उसे सामान्य संवर्ग के लिए अभिप्रेत पद के विरुद्ध नियुक्त किए जाने का प्रस्ताव नहीं दिया जा सकता था ।

6. न्यायालय का इंगित प्रश्न यह था कि प्राइवेट प्रत्यर्थी की योग्यता (मेरिट) क्या थी, याची के विद्वान् काउंसेल ने ऋजुतः यह निवेदन किया कि वह सामान्य संवर्ग के अधीन चयनित अंतिम अभ्यर्थी के मुकाबले अधिक योग्य था ।

7. याची के विद्वान् काउंसेल को सुनने के पश्चात्, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि वर्तमान याचिका में कोई गुणागुण नहीं है । यह सुस्थिर विधि है कि अनुसूचित जाति संवर्ग से संबंधित व्यक्ति, यदि योग्यता पर सामान्य संवर्ग अभ्यर्थी के मुकाबले बेहतर प्रदर्शन करता है तो उसे सामान्य संवर्ग के लिए अभिप्रेत पद के विरुद्ध नियुक्ति का प्रस्ताव दिया जा सकता है और उसे मात्र अनुसूचित जाति संवर्ग के लिए आरक्षित पद के विरुद्ध पद प्राप्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है ।

जैसा कि भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया है उक्त विधि के पीछे कारण और तर्कसंगतता यह है कि यदि कोई अनुसूचित जाति संवर्ग या अनुसूचित जनजाति संवर्ग से हो सकता है, से संबंधित व्यक्ति, सामान्य संवर्ग अभ्यर्थियों से संबंधित व्यक्तियों के स्तर पर अंक अर्जित करते हुए, स्वयं अपनी योग्यता पर नियोजन प्राप्त करने की स्थिति में है तो ऐसे अभ्यर्थी को सामान्य संवर्ग से संबंधित पद का प्रस्ताव दिया जा सकता है जिससे कि अन्य अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अभ्यर्थियों की उस पद के विरुद्ध नियुक्ति की जा सके जो विशिष्ट संवर्ग के लिए आरक्षित हैं ।

8. क्योंकि यह विवादित नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 2 को नियुक्ति प्रस्ताव दिया गया है, सामान्य संवर्ग पद के विरुद्ध हो सकता है किन्तु शुद्धतः स्वयं अपनी योग्यता पर, इसलिए, इस न्यायालय को सामान्य संवर्ग के लिए आरक्षित पद के विरुद्ध प्राइवेट प्रत्यर्थी को नियुक्ति प्रस्ताव देने का प्रत्यर्थी सं. 1 के कृत्य में कोई कमी नजर नहीं आती है । तद्नुसार, यह याचिका, इसके साथ ही लम्बित प्रकीर्ण आवेदनों, यदि कोई हों, को आरम्भ से ही खारिज की जाती है ।

याचिका खारिज की गई ।

क.

संसद् के अधिनियम

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971

(1971 का अधिनियम संख्यांक 70)

[24 दिसम्बर, 1971]

न्यायालयों के अवमान के लिए दंडित करने के बारे में कुछ न्यायालयों की शक्तियों को परिनिश्चित और परिसीमित करने के लिए और उस सम्बन्ध में उनकी प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के बाईसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में अधिनियमित हो :–

1. संक्षिप्त नाम और विस्तार – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 है ।

(2) इसका विस्तार सम्पूर्ण भारत पर है :

परन्तु यह जम्मू-कश्मीर राज्य को वहां तक के सिवाय लागू नहीं होगा जहां तक इस अधिनियम के उपबंधों का सम्बन्ध उच्चतम न्यायालय के अवमान से है ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "न्यायालय अवमान" से सिविल अवमान अथवा आपराधिक अवमान अभिप्रेत है ;

(ख) "सिविल अवमान" से किसी न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री, निदेश, आदेश, रिट या अन्य आदेशिका की जानबूझकर अवज्ञा करना अथवा न्यायालय से किए गए किसी वचनबन्ध को जानबूझकर भंग करना अभिप्रेत है ;

(ग) "आपराधिक अवमान" से किसी भी ऐसी बात का (चाहे

बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा, या संकेतों द्वारा या दृश्य रूपणों द्वारा या अन्यथा) प्रकाशन अथवा किसी भी अन्य ऐसे कार्य का करना अभिप्रेत है –

(i) जो किसी न्यायालय को कलंकित करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसे कलंकित करने की है अथवा जो उसके प्राधिकार को, अवनत करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसे अवनत करने की है ; अथवा

(ii) जो किसी न्यायिक कार्यवाही के सम्यक् अनुक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, या उसमें हस्तक्षेप करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है ; अथवा

(iii) जो न्याय प्रशासन में किसी अन्य रीति से हस्तक्षेप करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है अथवा जो उसमें बाधा डालता है या जिसकी प्रवृत्ति उनमें बाधा डालने की है ;

(घ) "उच्च न्यायालय" से किसी राज्य अथवा संघ राज्यक्षेत्र के लिए उच्च न्यायालय अभिप्रेत है और किसी संघ राज्यक्षेत्र में न्यायिक आयुक्त का न्यायालय इसके अन्तर्गत है ।

3. किसी बात के निर्दोष प्रकाशन और वितरण का अवमान न होना – (1) कोई व्यक्ति इस आधार पर कि उसने किसी ऐसी बात को (चाहे बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या दृश्य रूपणों द्वारा या अन्यथा) प्रकाशित किया है जो प्रकाशन के समय लम्बित किसी सिविल या दाण्डिक कार्यवाही के सम्बन्ध में न्याय के अनुक्रम में हस्तक्षेप करती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है अथवा जो उसमें बाधा डालती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें बाधा डालने की है, उस दशा में न्यायालय अवमान का दोषी नहीं होगा जिसमें उस समय उसके पास यह विश्वास करने के समुचित आधार नहीं थे कि वह कार्यवाही लम्बित थी ।

(2) इस अधिनियम में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, किसी ऐसी सिविल या दाण्डिक

कार्यवाही के संबंध में, जो प्रकाशन के समय लम्बित नहीं है, किसी ऐसी बात के प्रकाशन के बारे में, जो उपधारा (1) में वर्णित है, यह नहीं समझा जाएगा कि उससे न्यायालय अवमान होता है ।

(3) कोई भी व्यक्ति इस आधार पर कि उसने ऐसा कोई प्रकाशन वितरित किया है जिसमें कोई ऐसी बात अन्तर्विष्ट है जो उपधारा (1) में वर्णित है, उस दशा में न्यायालय अवमान का दोषी नहीं होगा जिसमें वितरण के समय उसके पास यह विश्वास करने के समुचित आधार नहीं थे कि उसमें यथापूर्वोक्त कोई बात अन्तर्विष्ट थी या उसके अन्तर्विष्ट होने की सम्भावना थी :

परन्तु यह उपधारा निम्नलिखित के विवरण के बारे में लागू न होगा –

(i) कोई ऐसा प्रकाशन जो प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1867 (1867 का 25) की धारा 3 में अन्तर्विष्ट नियमों के अनुरूप मुद्रित या प्रकाशित न होते हुए अन्यथा मुद्रित या प्रकाशित पुस्तक या कागजपत्र है ;

(ii) कोई ऐसा प्रकाशन जो उक्त अधिनियम की धारा 5 में अन्तर्विष्ट नियमों के अनुरूप प्रकाशित न होते हुए अन्यथा प्रकाशित समाचारपत्र है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए कोई न्यायिक कार्यवाही –

(क) निम्नलिखित दशाओं में लम्बित कही जाती है –

(क) सिविल कार्यवाही के मामले में जब वह वादपत्र फाइल करके या अन्यथा संस्थित की जाती है,

(ख) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) या किसी अन्य विधि के अधीन किसी दाण्डिक कार्यवाही के मामले में –

(i) जहां वह किसी अपराध के किए जाने से संबंधित है वहां जब आरोप-पत्र या चालान फाइल किया जाता है अथवा

जब अपराधी के विरुद्ध न्यायालय, यथास्थिति, समन या वारंट निकालता है, और

(ii) किसी अन्य मामले में जब न्यायालय उस विषय का संज्ञान करता है जिससे कार्यवाही संबंधित है ; और

किसी सिविल या दाण्डिक कार्यवाही के मामले में तब तक लम्बित बनी रही समझी जाएगी जब तक वह सुन नहीं ली जाती और अन्तिम रूप से विनिश्चित नहीं कर दी जाती, अर्थात् उस मामले में जहां अपील या पुनरीक्षण हो सकता है, जब तक अपील या पुनरीक्षण को सुन नहीं लिया जाता और अन्तिम रूप से विनिश्चित नहीं कर दिया जाता, या जैसा अपील या पुनरीक्षण न किया जाए वहां जब तक उस परिसीमा-काल का अवसान नहीं हो जाता जो ऐसी अपील या पुनरीक्षण के लिए विहित है ;

(ख) जिसे सुन लिया गया है और अन्तिम रूप से विनिश्चित कर दिया गया है, केवल इस बात के ही कारण लम्बित नहीं समझी जाएगी कि उसमें पारित डिक्री, आदेश या दण्डादेश के निष्पादन की कार्यवाही लम्बित है ।

4. न्यायिक कार्यवाही की उचित और सही रिपोर्ट का अवमान न होना – धारा 7 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए यह है कि कोई भी व्यक्ति किसी न्यायिक कार्यवाही या उसके किसी प्रक्रम की उचित और सही रिपोर्ट प्रकाशित करने से न्यायालय अवमान का दोषी न होगा ।

5. न्यायिक कार्य की उचित और आलोचना का अवमान न होना – कोई भी व्यक्ति किसी मामले के, जिसे सुन लिया गया है और अन्तिम रूप से विनिश्चित कर दिया गया है, गुणागुण पर उचित टीका-टिप्पणी प्रकाशित करने से न्यायालय अवमान का दोषी न होगा ।

6. अधीनस्थ न्यायालयों के पीठासीन अधिकारियों के विरुद्ध परिवाद का कब अवमान न होना – कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे कथन के बारे में जो उसने किसी अधीनस्थ न्यायालय के पीठासीन अधिकारी की बाबत –

(क) किसी अन्य अधीनस्थ न्यायालय से, या

(ख) उच्च न्यायालय से,

जिसके अधीनस्थ वह न्यायालय है, सद्भावपूर्वक किया हो, न्यायालय अवमान का दोषी न होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में "अधीनस्थ न्यायालय" से किसी उच्च न्यायालय के अधीनस्थ कोई न्यायालय अभिप्रेत है ।

7. चैम्बर में या बन्द कमरे में कार्यवाहियों के संबंध में जानकारी के प्रकाशन का कुछ दशाओं के सिवाय अवमान न होना – (1) इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी कोई व्यक्ति चैम्बर में या बन्द कमरे में बैठे हुए न्यायालय के समक्ष किसी न्यायिक कार्यवाही की उचित और सही रिपोर्ट प्रकाशित करने से, निम्नलिखित दशाओं के सिवाय, न्यायालय अवमान का दोषी न होगा, अर्थात् –

(क) जब प्रकाशन तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति के उपबन्धों के प्रतिकूल है ;

(ख) जब न्यायालय, लोक-नीति के आधारों पर या अपने में निहित किसी शक्ति का प्रयोग करते हुए उस कार्यवाही से सम्बद्ध सभी जानकारी का या उस वर्णन की जानकारी का, जो प्रकाशित की जाती है, प्रकाशन स्पष्टत: प्रतिषिद्ध कर देता है ;

(ग) जब न्यायालय लोक व्यवस्था अथवा राज्य की सुरक्षा से सम्बन्धित कारणों से चैम्बर में या बन्द कमरे में बैठता है तब उस कार्यवाही से सम्बद्ध जानकारी का प्रकाशन ;

(घ) जब जानकारी किसी ऐसी गुप्त प्रक्रिया, खोज या आविष्कार के सम्बन्ध में है जो कार्यवाही में विवाद्यक है ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कोई भी व्यक्ति चैम्बर में या बन्द कमरे में बैठे हुए न्यायालय द्वारा दिए गए सम्पूर्ण आदेश या उसके किसी भाग का मूल पाठ या उचित और सही सारांश प्रकाशित करने से न्यायालय अवमान का दोषी न होगा जब तक कि न्यायालय ने लोक-नीति के आधारों पर,

या लोक व्यवस्था अथवा राज्य की सुरक्षा से संबद्ध कारणों से, या इस आधार पर कि उसमें गुप्त प्रक्रिया खोज या आविष्कार से संबंधित जानकारी अन्तर्विष्ट है या अपने में निहित किसी शक्ति का प्रयोग करते हुए, उसका प्रकाशन स्पष्टतः प्रतिषिद्ध नहीं कर दिया है ।

8. अन्य प्रतिवादों पर कोई प्रभाव न होना – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी भी बात का यह अर्थ न लगाया जाएगा कि उसमें यह विवक्षित है कि कोई अन्य ऐसा प्रतिवाद जो न्यायालय अवमान की किन्हीं कार्यवाहियों में विधिमान्य प्रतिवाद होता, केवल इस अधिनियम के उपबन्धों के कारण ही उपलभ्य नहीं रहा है ।

9. अधिनियम द्वारा, अवमान की परिधि का बढ़ाना, विवक्षित न होना – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी भी बात का यह अर्थ न लगाया जाएगा कि उसमें यह विवक्षित है कि कोई ऐसी अवज्ञा या ऐसा भंग, प्रकाशन या अन्य कार्य जो इस अधिनियम से अन्यथा न्यायालय अवमान के रूप में दण्डनीय न होता ऐसे दण्डनीय है ।

10. अधीनस्थ न्यायालयों के अवमान के लिए दण्डित करने की उच्च न्यायालय की शक्ति – प्रत्येक उच्च न्यायालय को अपने अधीनस्थ न्यायालयों के अवमान के बारे में वही अधिकारिता, शक्तियां और प्राधिकार प्राप्त होंगे और वह उसी प्रक्रिया और पद्धति के अनुसार उनका प्रयोग करेगा जैसे उसे स्वयं अपने अवमान के बारे में प्राप्त है और जिसके अनुसार वह उनका प्रयोग करता है :

परन्तु कोई भी उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालय के बारे में किए गए अभिकथित अवमान का संज्ञान नहीं करेगा जबकि वह अवमान भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) के अधीन दण्डनीय अपराध है ।

11. अधिकारिता के बाहर किए गए अपराधों या पाए गए अपराधियों का विचारण करने की उच्च न्यायालय की शक्ति – उच्च न्यायालय को अपने या अपने अधीनस्थ किसी न्यायालय के अवमान की जांच करने और उसका विचारण करने की अधिकारिता होगी, चाहे ऐसे

अवमान का उसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर किया जाना अभिकथित हो या बाहर और चाहे वह व्यक्ति जो अवमान का दोषी अभिकथित है ऐसी सीमाओं के भीतर हो या बाहर ।

12. न्यायालय अवमान के लिए दण्ड – (1) इस अधिनियम या किसी अन्य विधि में अभिव्यक्त रूप से जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय न्यायालय अवमान सादे कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो दो हजार रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से, दण्डित किया जा सकेगा :

परन्तु न्यायालय को समाधानप्रद रूप से माफी मांगे जाने पर अभियुक्त को उन्मोचित किया जा सकेगा या अधिनिर्णीत दण्ड का परिहार किया जा सकेगा ।

स्पष्टीकरण – कोई भी माफी, जो अभियुक्त ने सद्भावपूर्वक मांगी है, केवल इस आधार पर नामंजूर नहीं की जाएगी कि वह सापेक्ष अथवा सशर्त है ।

(2) तत्समय प्रवृत किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी कोई न्यायालय चाहे अपने या अपने अधीनस्थ किसी न्यायालय के अवमान के बारे में उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट दण्ड से अधिक दण्ड अधिरोपित नहीं करेगा ।

(3) इस धारा में किसी बात के होते हुए भी जब कोई व्यक्ति सिविल अवमान का दोषी पाया जाता है तब यदि न्यायालय यह समझता है कि जुर्माने से न्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होगा और कारावास का दण्ड आवश्यक है, तो वह उसे सादे कारावास से दण्डादिष्ट करने के बजाय यह निदेश देगा कि वह छह मास से अनधिक की इतनी अवधि के लिए, जितनी न्यायालय ठीक समझे, सिविल कारागार में निरुद्ध रखा जाए ।

(4) जहां न्यायालय से किए गए वचनबंध के बारे में न्यायालय अवमान का दोषी पाया गया व्यक्ति, कोई कम्पनी है, वहां प्रत्येक व्यक्ति जो अवमान के किए जाने के समय कम्पनी के कारबार के संचालन के लिए कम्पनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था, और साथ ही वह कम्पनी भी, अवमान के दोषी समझे जाएंगे और

न्यायालय की इजाजत से, दण्ड का प्रवर्तन, प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को सिविल कारागार में निरुद्ध करके किया जा सकेगा :

परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को दण्ड का भागी नहीं बनाएगी यदि वह साबित कर देता है कि अवमान उसकी जानकारी के बिना किया गया था अथवा उसने उसका किया जाना निवारित करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(5) उपधारा (4) में किसी बात के होते हुए भी जहां उसमें निर्दिष्ट न्यायालय अवमान किसी कम्पनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अवमान कम्पनी के किसी निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी की सम्मति अथवा मौनानुकूलता से किया गया है या उसकी किसी उपेक्षा के कारण हुआ माना जा सकता है, वहां ऐसा निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अवमान का दोषी समझा जाएगा और न्यायालय की इजाजत से, दण्ड का प्रवर्तन, उस निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी को सिविल कारागार में निरुद्ध करके किया जा सकेगा ।

स्पष्टीकरण – उपधारा (4) और (5) के प्रयोजन के लिए –

(क) "कम्पनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और उसके अन्तर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम भी है ; और

(ख) किसी फर्म के सम्बन्ध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

[1][**13. कतिपय मामलों में अवमानों का दंडनीय न होना** – तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, –

(क) कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन न्यायालय अवमान के लिए दंड तब तक अधिरोपित नहीं करेगा जब तक उसका यह समाधान नहीं हो जाता है कि अवमान ऐसी प्रकृति का है कि वह न्याय के सम्यक् अनुक्रम में पर्याप्त हस्तक्षेप करता है, या उसकी प्रवृत्ति पर्याप्त हस्तक्षेप करने की है ;

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 6 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(ख) न्यायालय, न्यायालय अवमान के लिए किसी कार्यवाही में, किसी विधिमान्य प्रतिरक्षा के रूप में सत्य द्वारा न्यायानुमत की अनुज्ञा दे सकेगा यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि वह लोकहित में है और उक्त प्रतिरक्षा का आश्रय लेने के लिए अनुरोध सद्भाविक है ।]

14. जहां अवमान उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के सम्मुख है, वहां प्रक्रिया – (1) जब यह अभिकथित किया जाता है या उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय को, अपने अवलोकन पर यह प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति उसकी उपस्थिति में या उसके सुनते हुए किए गए अवमान का दोषी है तब वह न्यायालय ऐसे व्यक्ति को अभिरक्षा में निरुद्ध करा सकेगा और न्यायालय के उठने से पूर्व उसी दिन किसी भी समय या उसके पश्चात् यथासम्भवशीघ्र –

(क) उसे उस अवमान की लिखित जानकारी कराएगा जिसका उस पर आरोप है ;

(ख) उसे आरोप का प्रतिवाद करने का अवसर देगा ;

(ग) ऐसा साक्ष्य लेने के पश्चात् जो आवश्यक हो या जो ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया जाए और उस व्यक्ति को सुनने के पश्चात् चाहे तत्काल या स्थगन के पश्चात्, आरोप के मामले का अवधारण करने के लिए अग्रसर होगा ; और

(घ) ऐसे व्यक्ति को दण्डित करने या उन्मोचित करने का ऐसा आदेश करेगा जो न्यायसंगत हो ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां कोई व्यक्ति जिस पर उस उपधारा के अधीन अवमान का आरोप लगाया गया है, चाहे मौखिक रूप से या लिखित रूप से, आवेदन करता है, कि उसके विरुद्ध आरोप का विचारण उस न्यायाधीश या उन न्यायाधीशों से, जिसकी या जिनकी उपस्थिति में या जिसके या जिनके सुनते हुए अपराध का किया जाना अभिकथित है, भिन्न किसी न्यायाधीश द्वारा किया जाए और न्यायालय की राय है कि ऐसा करना साध्य है और आवेदन को उचित न्याय प्रशासन के हित में मंजूर किया जाना चाहिए तो वह उस मामले

के तथ्यों के कथन सहित मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष ऐसे निदेशों के लिए रखवाएगा जिन्हें वह उसके विचारण की बाबत जारी करना ठीक समझे ।

(3) किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए, उस व्यक्ति के जिस पर उपधारा (1) के अधीन अवमान का आरोप है, उस विचारण में जो उपधारा (2) के अधीन दिए गए निदेश के अनुसरण में उस न्यायाधीश या उन न्यायाधीशों से, जिसकी या जिनकी उपस्थिति में जिसके या जिनके सुनते हुए अपराध का किया जाना अभिकथित है, भिन्न किसी न्यायाधीश द्वारा किया जाता है, यह आवश्यक न होगा कि वह न्यायाधीश या वे न्यायाधीश जिसकी या जिनकी उपस्थिति में या जिसके या जिनके सुनते हुए अपराध का किया जाना अभिकथित है, साक्षी के रूप में उपस्थित हो या उपस्थित हों और उपधारा (2) के अधीन मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा गया कथन मामले में साक्ष्य माना जाएगा ।

(4) न्यायालय निदेश दे सकेगा कि वह व्यक्ति जिस पर इस धारा के अधीन अवमान का आरोप है आरोप का अवधारण होने तक ऐसी अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा जैसी वह न्यायालय विनिर्दिष्ट करे :

परन्तु यदि प्रतिभुओं सहित या रहित बन्धपत्र निष्पादित कर दिया जाता है जो उतनी रकम का है जितनी न्यायालय पर्याप्त समझता है और जिसमें यह शर्त है कि वह व्यक्ति जिस पर आरोप है, बन्धपत्र में वर्णित समय और स्थान पर हाजिर होगा और जब तक न्यायालय द्वारा अन्यथा निदेश नहीं दे दिया जाता ऐसे हाजिर होता रहेगा तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा :

परन्तु यह और कि यदि न्यायालय ठीक समझता है तो ऐसे व्यक्ति से जमानत लेने के बजाय उसकी यथापूर्वोक्त हाजिरी के लिए प्रतिभुओं के बिना उसके द्वारा बन्धपत्र निष्पादित किए जाने पर उसे उन्मोचित कर सकेगा ।

15. अन्य दशाओं में आपराधिक अवमान का संज्ञान – (1) धारा 14 में निर्दिष्ट अवमान से भिन्न आपराधिक अवमान की दशा में उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय या तो स्वप्रेरणा से या –

(क) महाधिवक्ता के, अथवा

(ख) महाधिवक्ता की लिखित सम्मति से किसी अन्य व्यक्ति के, [1][अथवा]

[1][(ग) दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र के उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में, ऐसे विधि अधिकारी के, जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, या ऐसे विधि अधिकारी की लिखित सम्मति से किसी अन्य व्यक्ति के,] समावेदन पर कार्रवाई कर सकेगा ।

(2) किसी अधीनस्थ न्यायालय के आपराधिक अवमान की दशा में उच्च न्यायालय, उस अधीनस्थ न्यायालय द्वारा किए गए निर्देश पर या महाधिवक्ता द्वारा, या किसी संघ राज्यक्षेत्र के सम्बन्ध में, ऐसे विधि अधिकारी द्वारा जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, किए गए समावेदन पर कार्रवाई कर सकेगा ।

(3) इस धारा के अधीन किए गए प्रत्येक समावेदन या निर्देश में वह अवमान विनिर्दिष्ट होगा जिसका कि वह व्यक्ति जिस पर आरोप है, दोषी अभिकथित है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में "महाधिवक्ता" पद से अभिप्रेत है –

(क) उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में, महान्यायवादी या महासालिसिटर ; तथा

(ख) उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में राज्य का या उन राज्यों में से किसी का जिनके लिए उच्च न्यायालय स्थापित किया गया है महाधिवक्ता ; तथा

(ग) न्यायिक आयुक्त के न्यायालय के सम्बन्ध में ऐसा विधि अधिकारी जिसे, केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 45 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

16. न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या न्यायिकतः कार्य करने वाले अन्य व्यक्ति द्वारा अवमान – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए कोई न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या न्यायिकत: कार्य करने वाला अन्य व्यक्ति भी अपने न्यायालय के या किसी अन्य न्यायालय के अवमान के लिए उसी रीति से दण्डनीय होगा जिससे कोई अन्य व्यक्ति होता है, और इस अधिनियम के उपबन्ध, यावत्शक्य तद्नुसार लागू होंगे ।

(2) इस धारा की कोई बात किसी न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या न्यायिकतः कार्य करने वाले अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी अधीनस्थ न्यायालय के आदेश या निर्णय के विरुद्ध उस न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या अन्य व्यक्ति के समक्ष लम्बित किसी अपील अथवा पुनरीक्षण में उस अधीनस्थ न्यायालय की बाबत की गई किन्हीं समुक्तियों या टिप्पणों को लागू नहीं होगी ।

17. संज्ञान के पश्चात् प्रक्रिया – (1) धारा 15 के अधीन प्रत्येक कार्यवाही की सूचना की तामील उस व्यक्ति पर जिस पर आरोप है, वैयक्तिक रूप से की जाएगी जब तक कि न्यायालय, ऐसे कारणों से जो अभिलिखित किए जाएंगे, अथवा निदेश न दे ।

(2) सूचना के साथ निम्नलिखित होंगे –

(क) किसी समावेदन पर प्रारम्भ की गई कार्यवाही की दशा में, समावेदन की प्रतिलिपि तथा उन शपथपत्रों की भी प्रतिलिपियां, यदि कोई हों, जिन पर ऐसा समावेदन आधारित है ; तथा

(ख) किसी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा, किए गए निर्देश पर प्रारम्भ की गई कार्यवाही की दशा में, उस निर्देश की प्रतिलिपि ।

(3) यदि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि उस व्यक्ति के, जिस पर धारा 15 के अधीन आरोप है, सूचना की तामील से बचने के लिए फरार होने या छिप जाने की सम्भावना है तो वह उसकी उतने मूल्य या रकम की संपत्ति की, जो वह न्यायालय युक्तियुक्त समझे, कुर्की का आदेश कर सकेगा ।

(4) उपधारा (3) के अधीन प्रत्येक कुर्की सिविल प्रक्रिया संहिता,

1908 (1908 का 5) में धन के संदाय की डिक्री के निष्पादन में सम्पत्ति की कुर्की के लिए उपबन्धित रीति से क्रियान्वित की जाएगी और यदि ऐसी कुर्की के पश्चात्, आरोपित व्यक्ति उपस्थित हो जाता है और न्यायालय को समाधानप्रद रूप से दर्शित कर देता है कि वह सूचना की तामील से बचने के लिए फरार नहीं हुआ था या छिपा नहीं था तो न्यायालय खर्चे के बारे में या अन्यथा ऐसे निबन्धनों पर, जैसे वह ठीक समझे, उसकी सम्पत्ति को कुर्की से निर्मोचित करने का आदेश देगा ।

(5) कोई व्यक्ति जिस पर धारा 15 के अधीन अवमान का आरोप है अपने प्रतिवाद के समर्थन में शपथपत्र फाइल कर सकेगा, और न्यायालय या तो फाइल किए गए शपथपत्रों पर या ऐसा अतिरिक्त साक्ष्य लेने के पश्चात् जैसा आवश्यक हो, आरोप के विषय को अवधारित कर सकेगा और ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जैसा मामले में न्याय के लिए अपेक्षित हो ।

18. आपराधिक अवमान के मामलों की सुनवाई न्यायपीठों द्वारा किया जाना – (1) धारा 15 के अधीन के आपराधिक अवमान के प्रत्येक मामले की सुनवाई और अवधारण कम से कम दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा किया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) न्यायिक आयुक्त के न्यायालय को लागू न होगी ।

19. अपीलें – (1) अवमान के लिए दण्डित करने की अपनी अधिकारिता के प्रयोग में उच्च न्यायालय के किसी आदेश या विनिश्चय की साधिकार अपील –

(क) यदि आदेश या विनिश्चय एकल न्यायाधीश का है, तो न्यायालय के कम से कम दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ को होगी;

(ख) यदि आदेश या विनिश्चय न्यायपीठ का है, तो उच्चतम न्यायालय को होगी :

परन्तु यदि आदेश या विनिश्चय किसी संघ राज्यक्षेत्र के किसी न्यायिक आयुक्त के न्यायालय का है तो ऐसी अपील उच्चतम न्यायालय को होगी ।

(2) किसी अपील के लम्बित रहने पर, अपील न्यायालय आदेश दे सकेगा कि –

(क) उस दण्ड या आदेश का निष्पादन, जिसके विरुद्ध अपील की गई है, निलम्बित कर दिया जाए ;

(ख) यदि अपीलार्थी परिरोध में है तो वह जमानत पर छोड़ दिया जाए ; और

(ग) अपील की सुनवाई इस बात के होते हुए भी की जाए कि अपीलार्थी ने अपने अवमान का मार्जन नहीं किया है ।

(3) यदि किसी आदेश से, जिसके विरुद्ध अपील फाइल की जा सकती है, व्यथित कोई व्यक्ति उच्च न्यायालय का समाधान कर देता है कि वह अपील करने का आशय रखता है तो उच्च न्यायालय उपधारा (2) द्वारा प्रदत्त सभी शक्तियों का या उनमें से किन्हीं का प्रयोग भी कर सकेगा ।

(4) उपधारा (1) के अधीन अपील, उस आदेश की तारीख से जिसके विरुद्ध अपील की जाती है –

(क) उच्च न्यायालय की किसी न्यायपीठ को अपील की दशा में, तीस दिन के भीतर की जाएगी ;

(ख) उच्चतम न्यायालय को अपील की दशा में, साठ दिन के भीतर की जाएगी ।

20. अवमान के लिए कार्यवाहियां करने की परिसीमा – कोई न्यायालय अवमान के लिए कार्यवाहियां, या तो स्वप्रेरणा पर या अन्यथा, उस तारीख से, जिसको अवमान का किया जाना अभिकथित है, एक वर्ष की अवधि के अवसान के पश्चात् प्रारम्भ नहीं करेगा ।

21. अधिनियम का न्याय पंचायतों या अन्य ग्राम न्यायालयों को लागू न होना – इस अधिनियम की कोई भी बात न्याय प्रशासन के लिए किसी विधि के अधीन स्थापित न्याय पंचायतों या अन्य ग्राम न्यायालयों के, चाहे वे किसी भी नाम से ज्ञात हों, अवमान को लागू नहीं होगी ।

22. अधिनियम का अवमान से सम्बन्धित अन्य विधियों के अतिरिक्त होना, न कि उनका अल्पीकारक – इस अधिनियम के उपबन्ध, न्यायालयों के अवमान से सम्बन्धित किसी अन्य विधि के उपबन्धों के अतिरिक्त होंगे, न कि उनके अल्पीकारक ।

23. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की नियम बनाने की शक्ति – यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या कोई उच्च न्यायालय किसी ऐसे विषय का उपबन्ध करने के लिए जो उसकी प्रक्रिया से सम्बन्धित हो, ऐसे नियम बना सकेगा जो इस अधिनियम के उपबन्धों से असंगत न हों ।

24. निरसन – न्यायालय अवमान अधिनियम, 1952 (1952 का 32) एतद्द्वारा निरसित किया जाता है ।

———————

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145
2.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
3.	भारत का सांविधानिक इतिहास - (103वां संविधान संशोधन तक) - श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
4.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व - डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2024	कीमत रु. 2,500
2. भारत का संविधान (पाकेट एडीशन)	2024	कीमत रु. 325

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः सिविल और दांडिक के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in